UNIVERSAL LIBRARY
OU_182417
UNIVERSAL LIBRARY

पलायन

पलायन

कविता-संग्रह

[illegible]

[illegible]

सूची—

संशय की संध्या	....	१.
जागृति-गान	....	५.
रुग्ण जीवन	....	१०.
कल्पना के प्रति	....	१६.
विद्रोह कर !	....	१९.
निश्चित अभियान	....	२१.
दूर देश का रहने वाला	....	२३.
अज्ञात भाई	....	२४.
बनजारा	....	२५.
अभागे कैदी	....	२६.
अरुण प्रभात	....	२७.
वे मानव	....	२८.
तेरी निशानी	....	२९.
बदली की रात	....	३१.
प्रकाश की पुकार	....	३३.
एकाकी	....	३५.
अन्तिम चितवन	....	३६.
मरण की छाया में	....	३८.
कुमुद का खिलना	....	४०.
अनुताप	....	४२.
गीत–मञ्जरी	....	४५.
वञ्चित पति	....	६५.
स्वर्ग–वासी की स्मृति में	....	६७.
पलायन	....	७३.

श्री चक्रपाणि को—

प्रथमावृत्ति १९५१.

सर्वाधिकार सुरक्षित

मूल्य :

डेढ़ रुपया

बी. एन. के. प्रेस

३७, आचारप्पन स्ट्रीट मद्रास - १. द्वारा मुद्रित

इस पुस्तक के बारे में—

यह पुस्तक लेखक की प्रथम कृति है। पर इसको प्रारंभिक कविताओं का संग्रह नहीं कहा जा सकता। क्योंकि इसके पहले लेखक ने अपने दो ऐसे ही कविता-संग्रह प्रकाशन के अयोग्य समझ कर नष्ट कर दिए थे।

इस संग्रह की सारी कविताएँ १९४० से १९५० तक की अवधि में लिखी गई थीं। शायद इनमें प्रखर मौलिकता या भयोत्पादक गंभीरता नहीं दिखाई देगी। लेखक की दृष्टि में अधिकांश प्रायोगिक प्रयास मात्र हैं। हाँ, अन्त की तीनों कविताओं में पाठकों को जरूर कुछ विशिष्टता गोचर होगी। क्योंकि वे तीनों लेखक की तेलुगू कविताओं के निजी अनुवाद हैं। उनसे पाठकों को और कुछ नहीं तो, तेलुगू की आधुनिक कविता-धारा की गति-विधि का पता जरूर लग जाएगा। क्योंकि लेखक तेलुगू के उदीयमान कवियों में से एक है।

हम आशा करते हैं कि दक्षिण के एक लेखक की यह पुस्तक हिंदी-पाठकों से जरूर प्रेम और आदर प्राप्त करेगी।

—प्रकाशक

सूची—

संशय की संध्या	....	१.
जागृति-गान	....	५.
रुग्ण जीवन	....	१०.
कल्पना के प्रति	....	१६.
विद्रोह कर !	....	१९.
निश्चित अभियान	....	२१.
दूर देश का रहने वाला	....	२३.
अज्ञात भाई	....	२४.
बनजारा	....	२५.
अभागे कैदी	....	२६.
अरुण प्रभात	....	२७.
वे मानव	....	२८.
तेरी निशानी	....	२९.
बदलों की रात	....	३१.
प्रकाश की पुकार	....	३३.
एकाकी	....	३५.
अन्तिम चितवन	....	३६.
मरण की छाया में	....	३८.
कुमुद का खिलना	....	४०.
अनुताप	....	४२.
गीत–मञ्जरी	....	४५.
वञ्चित पति	....	६५.
स्वर्ग–वासी की स्मृति में	....	६७.
पलायन	....	७३.

श्री चक्रपाणी को—

'Because I do not hope to turn again
Let these words answer
For what is done, not to be done again
May the judgment not be too heavy upon us'

संशय की संध्या

इस उदार निस्सीम व्योम में भावों की पाँखें फैला कर
जीवन के महान नाटक के क्रूर रूप की अवहेला कर
आज उच्चता की ऊँचाई पर असीमता की सीमा का
दिग्दर्शन कर, उसी शिखर पर यह कम्पित कल्पना-पताका
गाड़, मनुज की विजय-घोषणा गाने का क्यों मन होता है?
इस आशा में जय जागृत है या गंभीर पतन सोता है?
यह अनंत अवकाश हृदय को खींच रहा है क्यों चुंबक सा?
दुर्निवार का यह आमंत्रण छू जाता है प्रेम-पुलक सा।
महाशून्य का मोहालिंगन दूर, किंतु क्यों निकट दीखता?
किस अधीरतम आकर्षण का गीत गा रही है नीरवता?
इस संकुचित क्षुद्र कारा की शैल-भित्तियाँ तोड़-ताड़ कर
श्याम गगन का सघन आवरण एक वार में चीर-फाड़ कर,
यह दिगंत-प्राचीर लाँघ कर मैं अनंतता को पाऊँगा;
देश-काल से परे शून्य की धारा में मैं बह जाऊँगा।
मैं अनंत का पथिक, बंधनों में न बँधा ही रह जाऊँगा;
अपने विहरण में सीमा का अत्याचार न सह पाऊँगा।
जीवन और मृत्यु के सागर जिस सीमा पर हुए सम्मिलित,
उस सीमा को पार करूँगा मैं लघुता का बंदी पीडित।

किंतु पुनः क्यों द्विगुण वेग से यह संशय उर भेद रहा है?
यह स्वतंत्रता या कायरता? शेष कौन यह खेद रहा है?
अंधकार की सघन यवनिका चीर कौन यह ध्वनि आती है?
जिसके आँचल बीच सत्य की विमल ज्योति छवि खुल पाती है;
'जिस अनन्त की स्वप्न-ज्योति में तू जीवन को जाँच रहा है,
वह असत्य का रंग-रँगीला सुन्दर भ्रामक काँच रहा है।
जो स्वतंत्रता महा-सत्य बन तुझको प्रतिपल मोह रही है
वह मृगजल है, तेरे मन की दुर्बलता की खोह रही है।
उस अनंत की महा-शून्यता देख दृष्टि तव चकित हुई है।
उस अगाध सूनी गहराई में प्रतिध्वनि बन भ्रमित हुई है।
तू ससीम से चिर असीम बन जाने का जो सपना रचता,
वह तो तेरा असामर्थ्य है, उसकी जननी है अक्षमता।
सीमा-बंधन-हीन देश में तू पग धरना चाह रहा पर,
वहाँ चिरंतन अनस्तित्व का तांडव-नर्तन दाह रहा उर।
अंतहीन की वह अनंतता तेरी स्थिति का अंत करेगी;
तेरे जीवन की लघु द्युति से निज अंबर द्युतिवंत करेगी।
तेरे जीवन की पुकार उस विफल शून्य में खो जाएगी;
क्षण भर में उस मृत्यु-श्यामला की गोदी में सो जाएगी।
तू असीमता की सीमा पर अपनापन खो जाएगा रे!
ज्यों हिम-बिंदु सिंधु में मिल कर निज जीवन खो जाएगा रे!
अपनेपन से हीन विश्व में जीवन का व्यापार न होगा;
सुख-दुख के सतरंग बदलता सुंदर यह संसार न होगा।
जीवन के संघर्ष बीच से तू घबड़ा कर भाग रहा रे!
सत्य कहूँ तो तेरे उर का यही गूढ-तर राग रहा रे!

कोलाहल पूरित जगती से भाग रहा है तू समाधि में;
कर्म-चक्र से घबरा कर तू शरण खोजता श्रांत-व्याधि में।
इच्छा की अविराम लहरियाँ जीवन-पुलिन बीच टकरातीं;
द्रुत उत्थान-पतन के मिस वे अपना जीवन-चक्र चलातीं।
रक्त-राग-रंजित तरुणारुण प्रात-शून्य में घिर आता है;
संध्या की प्रज्वलित चिता में अपना मूल्य चुका पाता है।
मानव-उर के मृदुल प्रेम से रजनी की शीतलता रंजित,
जो प्रभात के पौ फटने में होती रहती सदा तिरोहित।
पुष्पावलियाँ खिलती हैं, निज अवधि बिता फिर मुरझाती हैं;
इस प्रति पल की सुंदरता में प्रकृति बदलती ही जाती है।
चक्रवाल के महाकूल पर टकराता है जीवन-सागर;
यह उद्दाम वासना-लहरित कितना महान, कितना सुंदर?
रक्त-स्वेद-कर्दम के ऊपर मानवता का नलिन खिला है,
युग युग के जीवन-विकास में अभ्युन्नति का पंथ मिला है।
मानव रत विनाश-लीला में, पर मानवता सृजन-शील है;
कितनी भूलों के कांटों पर खिला सफलता मधुर फूल है?
नित्य अपूर्ण, किंतु जीवन-पथ पूर्ण शिखर दिशि में चढ़ता है;
प्रति क्षण की गति में मानव को नूतन जय-छवि से मढ़ता है।
निज अविरत अंतर्घर्षण से विकल सृष्टि बढ़ती ही जाती,
अपनी इस अविराम प्रगति में फँस कर स्वयं बदलती जाती।
देखो, यहाँ हरेक धूलि-कण युग-संचित इतिहास लिए है!
कितनी पीडा के आँसू-जल, कितना मंगल-हास लिए है!
पर्वत की प्रत्येक शिला में अविदित-युग अभिसार भरे हैं!
शिशु की हर अधखुली कली में विगत-सृष्टि-श्रृंगार भरे हैं!

परम व्योम के खुले अंक में कितनी प्रेम-कथाएँ बीतीं?
मुक्त वायु के मधुर स्पर्श में कितनी गुप्त व्यथाएँ बीतीं?
महा-नाश के ध्वंस-नृत्य से परे सृष्टि बढ़ती ही जाती;
पतित सभ्यता के खँडहर में नूतन संस्कृति शीस उठाती।
रुक जा! ओ अनंत के प्रेमी! जीवन तुझे पुकार रहा है;
तुझे लुभाने के हित ही तो धरणी का शृंगार रहा है।
अरे मृत्य-पथ-यात्री कायर! जिसको विजय समझता है तू—
वही पराजय, मूरख बन कर किस भ्रम बीच उलझता है तू?
ओ रहस्य के प्रबल पुजारी! जीवन मुक्त, उदार, दीप्त है;
विमल ज्ञान की वैश्वानर द्युति जग के अणु अणु में प्रदीप्त है।
स्नेह-पूर्ण जीवन-आँचल से दूर भाग तू पछताएगा;
शुष्क अहम् के निर्जन मरु में तू प्यासा ही मर जाएगा।
जागृति का आकर्षण जगता, फूट रहा जीवन का गान!
अनस्तित्व का शून्य चीर कर उतरा देखो, स्वर्ण-विहान!

जागृति-गान

जाग रे! जीर्ण-शीर्ण कङ्काल!
अंध रजनी की कारा आज खुल गई, टूटे सिंह-कवाट,
मुक्त जीवन की ज्योति बिखेर पूर्व में जलती ज्वाल विराट;
युगों से बँधे नीड के द्वार खटखटाती वह वायु-तरंग—
यात्रियों की पद्-ध्वनि से पुनः हो उठी मुखरित जीवन-बाट;
जाग बंदी के सोये भाग! जाग साँपों सी शृंखल-माल!

देख, विस्तृत वह कारागार, जिसे कुछ कहते हैं संसार
और जिस की हरेक दीवार मनुजता पर दुस्सह ललकार,
यज्ञ-वेदी से जिस के सदा धूप सा छूने नभ के छोर
उठ रहा अविरत कलरव-रूप करुण-क्रंदन का हा-हा-कार!
आज उसकी रक्ताश्रु सनी ईंट से ईंट बजाता काल!

सुप्त था यह तमिस्र संसार, सुप्त जन - जीवन - पारावार,
रुद्ध था मनो-क्षितिज का द्वार, लुप्त मधु - वात-वीचि-संचार;
किंतु सहसा तम के उस पार मची खलबली, मचा कुछ शोर,
जलधि में जागी बाडव-ज्वाल, बह चली क्षुब्ध प्रचंड बयार,
और प्राची - जागरण - नयन खुले रक्तोज्ज्वल-क्रुद्ध-प्रवाल!

वृद्ध, जर्जर, जड यह संसार हो रहा तार तार इस बार,
ज्योति-तीरों से नभ का वक्ष छिद रहा वार-पार इस बार,
क्षितिज का फटता गर्भ कठोर निकलता रक्तारुण रवि-पिंड—
गुदड़ियों से रँग जाते मेघ, फूट चलती शोणित की धार;
नींद के पल न रहे इस बार तोड़ दो तंद्रा का जंजाल !

रात्रि के भग्न खँडहरों बीच जागता नूतन जन - संघर्ष,
पतन की पंकिल गोदी छोड़ बढ़ चला नव-जीवन-उत्कर्ष
नए दिन की छाया में हमें भाग्य से पुनः निपटना आज,
इसी से यह उत्कंठा नवल, नवल विस्मय-भय, नूतन हर्ष,
नई आहुतियों से ले शक्ति धधकती पुनः हृदय की ज्वाल !

कब्र सी घेर चतुर्दिक विश्व दीर्घ थी निशि की शव-सम-शाँति
बुझ गया था एकाकी दीप फैलती रही विफल उद्भ्रांति,
न जाने, कहाँ रहा वह स्वप्न छिपा धरती में बीज समान
चकित चितवन से जिसकी आज लुट रही जग में उज्ज्वल कांति !
लद गई नयी कोपलों से देख, अंबर की सूनी डाल !

कहाँ कुछ रहा विश्व में बचा बन गया जो न सुनहरा आज
मुदित हो जो इठलाता नहीं सात रंगों के सज कर साज
कहाँ कुछ रहा विश्व में शेष जो न जीवन से स्पंदित हुआ
धरा जिसने निज सिर पर नहीं मुक्ति का ज्योति भरा सरताज !
धरा की धुरी धसकती आज न पाती यह उन्माद सम्हाल !

कहाँ तू अब तक यों सो रहा आत्म-विस्मृति की चादर तान
मृत्यु - शीतल हिम-निद्रा - पूर्ण शून्य का तन पर किए वितान

जगत के कोलाहल से दूर विजन किस कोने में चुपचाप
रहा तू पड़ा श्रांत, जड, मौन भुला जीवन का मधुमय गान;
छुएगा आज तुम्हें उत्ताप धवल हिम के पाषाण पिघाल!

रात के मैले आँचल बीच सड़क की पटरी पर सिर टेक
क्षुधा की दुस्सह पीडा भूल मिटा चिंता की काली रेख
अभागे सोते रहे असंख्य नींद की गुदड़ी में लिपटे
झुका लेता सर जिन को देख यदि न होता मद-मत्त विवेक;
जगाती उन्हें प्रात की किरण चेतना का शीतल जल ढाल!

युगों से सहते अत्याचार हो उठा जग का जीवन भार
युगों की पाप-कथाओं से लदी चलती झुक भीत बयार,
लचीले हृदय बने पाषाण उँगलियों से मूँदे जग कान
कि सुनना पड़े कहीं न क्षुधार्त्त जनों की पागल चीख-पुकार;
मूर्ख वे, लो बज उठा अधीर समय का जागृति-शङ्ख कराल!

निशा के श्याम-गर्भ में मौन रहा जीवन दुःस्वप्न समान
कलुषमय जिसके घन तम का नहीं था मानों कहीं विहान,
प्रेत-छायाएँ बन-ठन कर नृत्य करती थीं चारों ओर,
मृतक जीवन के टुकड़ों पर पिले पड़ते थे भूखे श्वान;
चितानल का आसव कर पान अँधेरा भी जलता था लाल!

मृत्यु की एक महान समाधि, विश्व था जडता का गुरु-स्तूप,
मूक, भीषण, कर्दय, भीभत्स रही मानवता विकृत, कुरूप
कि सहसा निशि में कर छिन्न मोह-मकड़ी का झीना जाल
नव्य जीवन का रम्य प्रभात उग पड़ा अरुण, अमूल्य, अनूप;

चकित जीवन के लाखों कंठ गा उठे मुग्ध, विनोद-विभोर——
उठी कलरव की सिंधु-तरङ्ग उमड़ छूने नभ को तत्काल!

विश्व में फैला तीव्र प्रकाश, रहा तेरा उर अब भी अंध,
जगत में जागी जागृति-ज्वाल, रहा तू अब भी जड निस्पंद;
आज छाया रे चारों ओर ज्योति का हर्षोत्फुल्ल विकास
वायु की लहरों में भर स्फूर्ति मचलती आती मंद सुगन्ध;
किंतु तू रहा कहाँ जड,सुप्त अरे! कब होगा तेरा प्रात?
बोल कब बरसाएगा हास तुम्हारा कलुषित प्राची-भाल?

'दीर्घ जीवन-यात्रा' यह सोच चल दिए सभी बढ़ा कर पाँव
निकल आगे वे गए सुदूर ध्यान में रख कर दूर-पड़ाव,
लक्ष्य-चिंतन में विकल अधीर उन्हें पिछड़ों का रहा न ध्यान
विश्व उनके हित इक रणक्षेत्र उन्हें अबलों से नहीं लगाव;
अकेला कवि है पिछड़ा खड़ा जगाता तुम्हें पुकार पुकार
किंतु अब तक तुम जगे न हाय, दीर्घ-निद्रा में विसुध विहाल!

जाग रे! जीर्ण-शीर्ण कंकाल! हड्डियों के ऐ सूखे जाल!
युगों से जल जल कर म्रियमाण जाग रावण की चिति की ज्वाल!
जाग टुकड़ों पर पलते श्वान! जाग गीदड़ से कायर नीच!
जाग अज्ञान-निशा के मलिन क्रोड के बड़े लाड़ले लाल!
जाग ओ अपमानों के लक्ष्य! हिंस्र पशुओं के निर्बल भक्ष्य!
जाग बेबस के उर की हूक! छोड़ केंचुल ओ विषधर व्याल!

जाग बूढ़ी कुलटा की आस! गिरहकट, चोर, दस्यु, बदमाश!
जाग रे बेकारों के जोर! जाग बाघिन निरुपाय, हताश!

सभ्यता के लावारिस माल! कलंकित माँ के त्यक्त कपूत!
जाग द्रुत यक्ष्मा के कीटाणु! फूट शहरों की घोर सँडास!
जगत में जो भी अशिव, कुरूप आज धर ले साकार स्वरूप
युगों का कर लें साफ हिसाब, तनिक तब तक रुक जाए काल!

निखिल मानवता का अपमान एक जन की पीडित चीत्कार
समझ लो, बलात्कार जग पर एक भूखी स्त्री का व्यभिचार,
पूछ लो, कह देगा इतिहास, एक सीता हित लंका-नाश
एक बालक यदि रहा अनाथ समझ लो, है अनाथ संसार;
समझ, विध्वस्त मनुष्य-समाज प्रतारित हुआ व्यक्ति यदि एक
ईंट पर ही देकर गुरु-भार खड़ा रहता है सौध विशाल!

हो गया है पेंदे में छेद, डूबता जीवन का जल-यान;
त्वरित हो नाश, बँटाओ हाथ, बनो तुम इसके हित तूफान!
जीर्ण-युग के हे वाहक दास! डूबते जग के सर के बोझ!
इसे तू दो पहुँचा पाताल, न होने पाए पुनरुत्थान!
ध्यान रख, जीर्ण-विश्व-विध्वंस नए जग का होगा सोपान,
पीत पतझर पर धर कर पाँव सदा आते हैं पल्लव लाल!

मरण है मृत-जीवन से श्रेष्ठ क्योंकि देगा नव-जीवन दान,
कोढ़ सी शांत निशा से श्रेष्ठ सदा पीडा का रक्त-विहान,
बुद्धि यदि हो नत-शिर भयभीत, भला होगा उस से उन्माद—
मथित हो जीवन का सुख-सिंधु पुनः करना होगा विष-पान;
वंचना का यह मिथ्या-प्रात पुनः रजनी से हो आक्रांत—
चिता की जली लकड़ियों से बाल लेंगे हम लाख मशाल!

रुग्ण जीवन

ऊब गया, मैं ऊब गया हूँ, इस निष्क्रिय रोगी जीवन से,
शव समान अप्राण, घृणित इस जड जीवन के सूनेपन से;
अर्थ-हीन यह व्यर्थ क्षीणतर प्रति पल चिंताओं में घुलता,
सड़े-गले दुर्गन्धित कूड़े में गंदे कीड़ों सा पलता,
यह संतृप्त सदा अपने में, अपने बद्ध संकुचित जग में,
उसी युगों की घिसी लीक पर चलने का आदी है मग में;
अंत कहाँ रे निरानंद इस लक्ष्य-हीन लंबी यात्रा का?
किस सीमा पर पहुँच गड़ेगी मानवता की विजय-पताका?
जीवन-चक्र नहीं, यह तो है कोल्हू के बैलों सा चक्कर,
अंत वहीं होगी यह यात्रा शुरू हुई थी जिस सीमा पर;
कहो, किधर, किसकी आज्ञा से जीवन-यान चलाया जाता?
हाँक हाँक कर यह पशुओं का झुण्ड कहाँ पहुँचाया जाता?
किस की मर्जी? कौन बेरहम हमको कहाँ खदेड़ रहा है?
खूनी कोड़े से पीठों का नंगा चाम उधेड़ रहा है?
मानवता है कहाँ अरे! यह गूँगे पशुओं की जमात है;
हाँ, सज–धज कर कहीं जा रही जिंदा लाशों की बरात है!
प्राण कहाँ वह, जो विवर्ण इन सूखे मुखड़ों को चमका दे?
गान कहाँ वह, जो अवाक इन मंद उरों में स्पंदन ला दे?

इन लज्जित अवनत शीसों में, इन निश्चल, निष्प्रभ नयनों में,
मृत्यु-भार से झुके हुए इन जर्जर बाधा-गलित तनों में,
ज्योति कहाँ उल्लास-हास की? उस निर्बाध, मुक्त नर्तन की—
जो नित विवश खिलखिला उठती मृदुल गुदगुदी पा जीवन की?
वह जिसकी उन्मत्त परस ही नस नस में बिजली दौड़ाती,
उष्ण रक्त की भरी बाढ़ में निश्वासों की आँधी लाती;
कहाँ बेकली जो तन-मन को मीठे दर्दों से भर देती!
जो नीरस मरु से जीवन को झड़ी लगा रसमय कर देती?
कहाँ, यहाँ सब कुछ तो सूखा, सूखा और युगों से भूखा,
यह रसहीन ईख की सीठी, थोथा भूसी-फूस सरीखा;
इस की मुक्ति एक चिनगारी, एक लपट प्रलयंकर जो इन—
सूखी, जड, जर्जर लाशों को कर दे क्षण में जला क्षार-कण;
यह कङ्काल-जाल प्रति पद पर सूखी हड्डी खनक रही है—
मृत्यु-भजन की भरी झाँझ सी भीषण खाँसी झनक रही है;
कदम बढा, वह एक लाश जो चलती अब झर कर गिर जाती,
पर अपनी आँखें मूँदे यह भीड़ सदा बढ़ती ही जाती;
इसी तरह लाशों पर लाशें मृदुल पावड़ों सी बिछ जातीं,
लेकिन लापरवाह मनुजता आगे बढ़ते न हिचकिचाती;
मिट्टी पर मिट्टी, खँडहर पर खँडहर बढ़ते ही जाते हैं
नए सृजन-युग की समाधि को आदि प्रलय पग ठुकराते हैं;
यह संहार-सृजन की क्रीडा, जन्म-निधन का खेल घिनौना,
यह विधि का खिलवाड मनुज से, विषम-भाग्य का जादू टोना;
हाँ, संसार विशाल जेल इक, बद्ध पुरुष छटपटा रहा रे!
वहाँ मौत का ले परवाना काल द्वार खटखटा रहा रे!

मौत नहीं यह सम्मुख-रण में, खुली साँस लेते गिर मरना,
यह लहरों से उलझ-खेल कर नहीं विषम भव-सागर तरना;
बंद हवा में दम घुट घुट कर निस्सहाय मर जाना होगा—
तुम निश्शस्त्र, बद्ध, दुर्बल, पर नहीं चीख-चिल्लाना होगा;
चारों ओर अनंत शून्य है, कौन सुनेगा चीख तुम्हारी?
घिरी अदृश्य भित्तियों से हर आत्मा एकाकिन बेचारी;
निपट अँधेरी रात, चतुर्दिक छाया है भीषण अँधियाला,
हार्दिक प्रेम, सहानुभूति का नहीं कहीं भी रहा उजाला;
सन्नाटा है खड़ा स्वयं ही साँस रोक भौंचक सा होकर
भीषण उमस, वायु की तपती अंतर्ज्वाला से विह्वलतर;
हाँ, हाँ, वायु यहाँ देखो तो कैसे डर रुक-झुक कर चलती?
लाख युगों के शोक-भार से पच मरती, अपने में घुलती;
इस में युग युग के मासूमों के क्रंदन-स्वर मूक छिपे रे!
अकथ, अदृश्य अनाचारों के शत शैतानी लोक छिपे रे!
यहाँ धूल का हर जर्रा है किसी पवित्र रक्त से सींचा,
इसी लीक पर किसी दास ने वैभव का हिंसा-रथ खींचा;
सोचो तो, कितने आँसू से जीवन का सागर-जल खारा?
कब से टकराती इस तट पर खर मानवी शोक की धारा?
कितने दिन से यह हास्यास्पद जीवन-नाटक गया दिखाया?
कब से मँड़राती मानव के सिर पर दीन मरण की छाया?
जग की सुप्त चेतना में, इस युग युग की शीतल तंद्रा में—
जीवन का दुःस्वप्न जागता हिंस्र-जन्तु सा लुक छाया में;
वह विभीषिका पीछा करती ताक रही हर चाल हमारी,
मानवता सहमे शिकार सी भाग चली, था निकट शिकारी;

निश्चित अंत, फैसला विधि का पहले ही लिख रखा गया था,
फिर क्यों व्यर्थ जाल आशा का रच कर हमको छला गया था ?

दौड़ चला पवमान हाँफता मृग-जल से निज प्यास बुझाने,
वहाँ तपन की ज्वाला में जल लौटा लू बन कर झुलसाने;
दुपहर है जीवन-निदाघ की, तपता लौह तवे सा अग-जग,
जलती धूल, जल्द उठते हैं भूले-भटके राही के पग;
देख देख आँखें थकती हैं फैल रहा ऊष्मा का सागर,
लहरें उठतीं गगन चूमने काल-सर्प सी फुफकारें भर।
कहीं किसी के सुख-निवास की शीतल छाया तले प्रतीक्षा—
अमृत-कलश हाथ में ले जन को देगी प्राणों की भिक्षा;
इसी आस से विजन बाट के राही को प्रेरणा मिलेगी,
पर इस मरु के जलते उर में शांति-बेलि क्या कभी फलेगी ?
आस आस ही बनी रहेगी, पथिक न कभी पहुँच पाएगा,
आकर्षण के सूत्र कटे, यह मिलन न कभी निकट आएगा;
यह जीवन ही दीर्घ प्रतीक्षा किसी असंभव चमत्कार की,
बाट जोह आँखें पथराईं बिछुड़े किसी कठोर प्यार की।

उठी अनंत, अकूल शून्य में पीडा की निस्तब्ध तरंग,
कुछ पीला, ज्वर-ताप-तप्त सा पलटा जीवन-मुख का रंग;
डूबी रात रक्त-ज्वाला में, आया दिन करता कल रोर,
नए शोक, नूतन विपदाओं, नई हार का जागा शोर;
गूँज उठा नंगी दिशियों में दबा हुआ सा हा-हा-कार,
चलने लगा हजार हाथ से जीवन का कर्दय व्यापार;

पर वह जो बैठा खोया सा नैश हानियों पर सर धुनता—
इस उन्मत्त उलंग लास्य में कहो, कौन उस उर की सुनता?
इस दिन के उज्वल प्रकाश में छिपी हुई कितनी छायाएँ,
अंध-गुफाएँ जिनमें द्युति के दूत न कभी पहुँचने पाए?
जलता विफल प्रकाश निशा के आँचल में शीतलता पाने,
किंतु कहाँ वह अमर स्रोत जो बहता नर की प्यास बुझाने?
इस दिन की उत्तप्त श्रांति का, इस अविरल मानव श्रमजल का—
फल होगा टूटी निद्रा का ज्वर-प्रलाप तंद्रिल, दो पल का;
निष्फल और पराजित दिन के पद-चिह्नों में थके चरण धर,
निष्फल-तर रजनी आती रे! चल देती दो आँसू रोकर।
एक दर्द के दो दो पहलू, ज्योति-तिमिर के रंग बदलता,
चल देता यह निष्फल जीवन असंतृप्त मानव को छलता;
निष्फल घड़ियों, दिवस-पलों की यह लम्बी कतार चल देती;
अर्थ-हीन अभियान काल का, तेल कहाँ यह सूखी रेती?
बार बार आया मौका जो बिगड़ी बात बना सकता था,
जो जीवन-कंटक-वल्ली को सुम-किरीट पहना सकता था;
बार बार खोया हमने वह किस्मत के धोखे में पड़ कर,
अहंकार के छल में भूले हमने देखा कभी न मुड़ कर;
मरु के उर में हरित द्रुमों की झुरमुट, शीतल जल की धारा
पीछे छूट गई, अब तो यह तपती सिकता का जग सारा—
फैला है अनंत सागर सा एकाकी मानव को ग्रसने,
घेर-घार बेदम शिकार को उसकी मजबूरी पर हँसने;
बार बार वह उठा ज्वार सा जीवन की इच्छा दुर्दम का,
बार बार पर पुरस्कार था घोर निराशा के कर्दम का;

कठ-पुतली सा नाच रहा था मानव अपनी अंध-नियति का,
रहा एक कौतुक मानव का भाग्य-चक्र उन्नति-अवनति का;
यह विशाल ब्रह्मांड-भांड, ये भ्रमण-शील अगणित ग्रह-तारे,
जिन में एक बिंदु सी पृथ्वी जीवन का जंजाल पसारे,
जिसके कुछ उजड़े कोनों में मानव अंध-गर्व में फूले—
रेंग रहे इठलाते, मानों वे ही जग के नाथ अकेले;
इस अनंत, निर्जीव विश्व की प्राण-हीन लंबी काया में—
जीवन-कीट बिलबिलाते हैं दुर्गन्धित मृति की छाया में;
कितना निस्सहाय, कितना लघु, कितना दुर्बल और अकिंचन,
कितना क्षुद्र, तुच्छ, सीमित है घृणा-जनक मानव का जीवन!

कल्पना के प्रति

तू अनंत के स्वप्न-दीप का रंग-विरंगा ज्योतिर्जाल !
तू मानस के मृदु मराल की मधुर मद भरी चाल अराल !
वर्षा—विगत—विहायस में तू अश्रुत इंद्र—धनुष—टंकार !
चिर—बंधित मन के बंदी का तू है मुक्ति—विलास—विहार।
अमर—शांति—नंदन—मधुवन के पारिजात—सुम—पीत—पराग !
ओ विषाद—विष—व्याप्त हृदय के चिर चिंता-मय विकल विहाग !
जादू की स्वप्निल जगती की चित्रकारिणी चतुर सुजान !
वास्तवता की अंध-निशा की सुंदर स्वर्ण-विहान महान !
नैश हृदय के श्याम-क्षितिज पर प्रगटित तू पावन—प्रत्यूष !
मृत-तम के अविदित कोनों में ढाल रही प्रकाश-पीयूष।
जीवन—जलधि—जागरण—जप के गुरु-गँभीर फेनिल कल्लोल !
जल-कन्या-मणि-जटित-मुकुट के रुचिर-रत्न की कांति अमोल !
नव-नक्षत्र-कुसुम-मय निशि के केशों की मधु-गंध-हिलोर !
अपने शीतल सुखद-स्पर्श से छूती विश्व-पलक के छोर।
जीवन-निद्रा के सुख-सपने ! हे अविदित जगती के द्वार !
खींच रही हो व्याकुल मन को दिखा कौन छवि-मय संसार ?
बाल-हृदय के श्वेत-पत्र पर अस्फुट रेखा—चित्र अजान !
नव कंपन-मय नाद—सिंधु की लहर ! व्यथा के मोहन—गान !

जब जीवन के प्रथम प्रात में तू उड़ती थी ज्योति-विहंग,
रुग्ण-हृदय के बाल-काल की बन क्रीडा-मय पुलक-पतंग।
छाया—जग में आँख—मिचौनी खेल, कांति में बन साकार,
शिशु के विस्मय—व्यग्र दृगों में तू करती थी नग्न-विहार।
परियों की चंचल पाँखें या राज-सुता के अंचल—छोर,
नभ—गामी तुरंग, सागर में विविध—वर्ण मणियों के ढेर;
वह चुड़ैल जो सौतेली माँ बन करती थी अत्याचार,
किंतु अंत में जीत न्याय की, निर्दय षड्‌यंत्रों की हार—
बालक के मन में कहानियों का वह सुंदर विश्व विशाल,
जहाँ भाग्य के दूत बने थे मुखर राज-शुक और मराल!
हाँ, तूने ही रचा हृदय में वह सुंदर सुख—मय संसार,
जरा—मरण—अस्तित्व—समस्या—शोक—हीन वह विगत-विकार।
जब बालक बढ़ बदल गया बन भाव—प्रणव कुमार किशोर,
जिसके अंग—अंग में उठती जगते यौवन की हिलकोर—
तू उस के नव हृदय—क्षितिज में मुग्ध उषा के पंख पसार,
भय-विस्मय—आशा—विषाद्—मय कलित काम का कर संचार,
रचती है इक इंद्र—धनुष का सुख—मय सतरंगा संसार
तोड़—फोड़ वास्तविक जगत के लघु ससीम प्रस्तर—प्राकार।
वह खोया सा बैठा रहता तव क्रीडा में विवश विभोर,
विस्मय—विकल अधीर दृगों से छूता भाव-गगन के छोर;
नीचे दैनिक—संघर्षों में व्यस्त—विश्व—कोलाहल—रोर
लगता सहसा व्यर्थ, संकुचित नटखट शिशुओं का सा शोर।
और आज जब उतर गया मधु-मय यौवन का पहिला ज्वार,
छोड़ गया जो घास—फूस, वे नंगे पत्थर, शुष्क कँगार,

मैं विषण्ण सा सोच रहा हूँ, मिलन-रात्रि का वह अवसान-
मेरे सूने जीवन के हित छोड़ गया है कैसा दान ?
संध्या के विनील केशों सा कुछ मन पर घिरता आता,
श्रांत-चेतना को सहला कर गोदी में खींच सुलाता।
हाँ, मैं जान गया, तू ही वह मादकता की रानी है!
सपनों के रंगीन जगत की निंदिया भरी कहानी है!
ओ विषाद-मधु-मयी कल्पने! आओ, धीरे से आओ!
मेरे सूने मानस-नभ में सांध्य-छटा सी छिटकाओ!
आज पराजय की छाया में जीवन-युद्ध-भूमि से दूर,
मैं लेटा घायल, निस्संगी स्तब्ध ताकता नभ की ओर;
तारों के झिलमिल प्रकाश से सज कर अपना नीला गात,
उतर निर्बलों की ओ प्रेयसि! ले आँचल में स्वप्निल प्रात।
तेरे करुणा-पूर्ण वक्ष में अपना शीस छुपा लूँ मैं,
तेरे ही स्वर में कुछ गाकर अपनी पीर बहा लूँ मैं;
जब जग की सुंदरता, सुषमा मुझ से छल कर चल देती,
निर्दयता इस विकल-हृदय को पैरों तले कुचल देती—
तू अपने स्वप्निल साँसों का मधुर पराग बिखरती है,
विश्व-वंचना-विक्षत उर को फिर से चेतन करती है;
मैंने जग के नग्न सत्य से हो विरक्त मुँह फेर लिया,
तेरे अधरों का वह रक्तिम, मादक आसव पान किया;
मैं अपनापन भूल हर्ष से तेरे जग में विचर रहा,
मेरा हृदय-विषाद पिघल तव कुसुमों पर बन ओस बहा;
मैंने कर विद्रोह विश्व पर अपना इक संसार रचा—
जिसकी हो अनन्य रानी तुम, शेष नहीं कुछ भार बचा

विद्रोह कर!

युग-युगों से घिर रहा है विकल पृथ्वी पर अँधेरा,
किन्तु अब तक हो न पाया अमर जीवन का सबेरा;
दीप कितने जल चुके, बुझ भी चुके सूनी कबर पर—
किन्तु अब तक छू न पाए जड़ तिमिर का सुदृढ घेरा।
'शक्ति अपनी आजमा ले आज तू भी' कह रहा उर,
बलि-रुधिर-सिंचित शिला पर शीस अपना फोड़ कर!
यदि न तेरा साथ दे संसार तो तू चल अकेला
तोड़ निष्क्रिय रुग्णता के सूक्ष्म तारों का झमेला;
देख पीछे फिर नहीं, मुँह मोड़ ले उस गत जगत से—
आज तेरे सामने उज्ज्वल अनन्त भविष्य फैला।
किन्तु वह उज्ज्वल न भी हो, गाढ तमसाक्रांत भी हो,
तो व्यथा की दीपिका से ज्योति-मय वह खोह कर!
श्रांत तम में जल रही थी ज्योत जो जीवन-विभा की
लाख लहरों के थपेड़ों में अचञ्चल अमर झाँकी—
बुझ न पाए आज वह युग-सन्धि के धूसर क्षितिज में
कालिमा को सघन कर, फिर खींच तम की यवनिका सी;
आज निर्वाणोन्मुखी युग-ज्योति को उद्दीप्त कर फिर,
अरुण निज बलि-रक्त से उसको पुनः सस्नेह कर!

खोजता जिसको रहा तू आज तक वह भाग्य-तारा,
चिर असन्तोषी हृदय की तृप्ति–मय वह अमृत-धारा
जो तुम्हारी साँस में मिल, बन हृदय की तीव्र धड़कन
धमनियों में छोड़ती थी गरम लोहू का फवारा—
आज वह तुझसे मिलेगी दीप्ति बन बुझते हृदय की
और कानों में कहेगी—'मुक्ति से सम्मोह कर!'
जीर्ण, जर्जर रूढि-पंजर, अन्ध-मूढ परंपराएँ,
युग–युगों की दासता की शेष वे मिथ्या-कथाएँ
ध्वंस के विस्फोट-वश हो एक तिनके सी उड़ें बस,
क्रांति की ज्वाला-मुखी सी फूट जग पर फैल जाए!
सिद्ध सब बारूद है बस, एक चिनगारी नहीं रे,
प्राण-पीडा से प्रकम्पित लाश सी यह देह कर!
भग्न जग के खण्डहर में व्यक्ति एकाकी खड़ा है,
आज निर्भ्रम, श्लथ, निराश्रय, आन पर अपनी अड़ा है
और अपने ही भरोसे सर उठा निश्शङ्क, निर्भय,
श्रांत–रक्तिम, किन्तु दृढ पग से डगर पर चल पड़ा है!
आज वह निस्सङ्ग, ममता-स्नेह से है दूर तो क्या—
प्रेरणा जलती हृदय में अग्नि-द्रव सी दाह भर!
यह प्रेरणा चलती रहे, यह आरती जलती रहे,
यह साधना पलती रहे, नवरूप में ढलती रहे,
नित नवल विद्रोह का वरदान मिलता ही रहे—
युग-प्रगति की भूचाल से व्याकुल धरा हिलती रहे!
नित्य-परिवर्तित जगत में पद जरा के जम न पाएँ,
व्यर्थ आँसू बह न पाएँ उस अतीत-बिछोह पर!

निश्चित अभियान

'नियति हँस रही है परदे में और प्रभञ्जन रहा कराह !
आज उदधि में सजग हलाहल
आज नहीं तरने का संबल
श्याम कफन सा निशि का अञ्चल
फेनिल हँसी हँस रहा देखो, ऊर्मि माल पर मरण—प्रवाह !

भय से निज मुख ढाँप लिया है नील गगन ने देखो आज !
क्षुद्र तरी तेरी इस जल में
गल जाएगी इक दो पल में
मृदुल सुमन सी महा अनल में;
प्रलय पिया से मिलने का इस विकल विश्व ने साजा साज।

मेरा आलिंगन ढीला कर बन्धु, आज चलना न विचार !
आहत काल—व्याल मारुत में
हैं फुफकार रहे द्रुत-गति से,
आज विफल जीवन अनुरति में;
किस का विष-पूरित आमन्त्रण करता तुझमें पुलक-प्रसार ?'

'इस दिगन्त-विस्तृत जगती के अन्धकार-सागर के पार,
सुना अमर ज्वाला जलती है
अरुण सुमन माला खिलती है
उषा धूल में हिल पलती है
वहाँ दिव्य संगीत—सुरभि का होता रहता सदा प्रसार।

मृत्यु-घण्टिकाएँ बजती हैं, दुर्निवार का है आह्वान।
जीवन और मरण के सागर
उमड़ मिले जिस तम-वेला पर
वहाँ विदा का उत्सव सज कर
कोई दूर देश का भूला पथहारा गाता है गान।

आज तरंगों में आकर्षण, आँधी खींच रही है प्राण।
नग्न नियति का तांडव-नर्तन
खुला वक्ष देता आमन्त्रण
मोहक यह अधीर आलिंगन
बन्धु! न रोक आज तू मुझको, निश्चित है मेरा अभियान।'

दूर देश का रहने वाला

दूर देश का रहने वाला आया देश पराए,
जहाँ न कोई करे प्रतीक्षा पथ में नयन बिछाए;
देस पराया, भेस पराया, कोई बोल न चाले;
वह भी बस, मुसकाता रहता मन में चिन्ता पाले।
कभी अकेलेपन में डूबा चलता शीस झुकाए—
पार क्षितिज के देखा करता उत्सुक नयन लगाए!
कभी चौंक पड़ता था मानों कोई उसे बुलाता,
कभी विजन-वन-पथ में जाकर भरे कण्ठ से गाता।
कभी सिन्धु के तीर पहुँच कर घण्टों बैठा रहता—
मानों उसका देश पार से कुछ सँदेश है कहता।
कोई उसे देख हँसता था, कोई शीस हिलाता;
कोई करुण-हृदय से उसका मन बहलाने जाता।
उसने इक मैना पाली थी, उसको चारा देता,
ऐसे ही कुछ समय काटता, मन हलका कर लेता।
उसे एक दिन चीठी आई, कौन कहाँ से जाने,
उसकी वह अजीब सी भाषा कोई क्यों पहचाने?
कुछ दिन बीते, कोई उसके गेह गया, क्या देखा?
मैना मरी पड़ी पिंजरे, वह चला गया दे धोखा।
मैं क्या जानूँ, कहाँ गया वह? सुनता हूँ कुछ ऐसा;
दूर देश का रहने वाला दूर देश जा पहुँचा।

अज्ञात भाई

जिनके युग-अवदित कब्रों पर
निर्मित संस्कृति के सौध-शिखर
किन्तु जिन्हें है गया भूल इतिहास और संसार।
जिनके हाड़ों की ईंटों पर
चुने गए साम्राज्य-दुर्ग वर
पर जिनका कुछ शिला-लेख मानते नहीं आभार।
जिनके रक्त-स्वेद-कर्दम पर
है नलिनों से भरा सृष्टि-सार
पर जिनकी कुछ सुध न दिलाता मृदु सुगन्ध-संचार।
जिनको वञ्चित कर टुकड़ों पर
पलते कला-गगन के दिनकर
पर जिनको तम में रखते हैं सब ज्योतिर्भांडार।
जिनने भू का वक्ष फाड़ कर
किया मुकुट-भूषित संस्कृति-शिर
पर जो अधनंगे चलते हैं लिए दैन्य का भार।
ओ मेरे अज्ञात भाइयो!
आज तुम्हें पहचान गए हम
सकल वञ्चना जान गए हम
और न चलने देंगे हम यह भीषण अत्याचार।
खड़ी करेंगे नव-संस्कृति हम
जिसके फाल-भाग पर चमचम
तेरी यादगार चमकेगी बन प्रकाश का द्वार।

बनजारा

निर्लिप्त कमल पर जलकण सा मैं सदा ढुल रहा विश्व बीच;
तुम विफल रह गए मेरा पथ आँसू धारा से सींच सींच।
तेरी पुकार गूँजती रही, मैं निठुर अनसुनी किए चला;
ममता का धुँधला मधुर दीप मेरे उर बीच कभी न जला।
कितनी आहों का बाष्प-जाल, मेरा मन-मुकुर न मलिन बना;
मेरे उर-नभ में घन विषाद का करुण वितान कभी न तना।
मैं भौंरे सा जग उपवन में रस लेकर नित उड़ उड़ जाता,
अपनेपन का मृदु-मधुर जाल मुझको है फँसा नहीं पाता।
श्यामल माया के मेघ बीच मैं बिजली सा बन निकल गया;
कुछ दिन तक मुझको सुख देता फिर कोई हृदय प्रदेश नया।
ज्यों ही बँधने का समय हुआ मैं मधुर सुरभि सा चला गया,
कोई फूलों के मोह बीच बस हार गूँथ कर छला गया।
मैं मारुत की भटकी तरंग बन वन-पर्वत में घूम चुका—
पर किसी स्थान पर दो क्षण तक ये थके पाँव सहला न सका।
मानवी प्रेम के बंधन हैं मेरे हित एक खिलौने से,
मैं घबरा कर चल देता हूँ इस अबल मधुरता-टोने से;
मेरे इस पत्थर से उर पर लतिका के जड़ जम नहीं सके,
इस नग्न शून्यता के तल को रँग-रूप न छू तक कहीं सके।

अभागे कैदी !

आज सीखचों में सिर जड़ कर
गुप्त व्यथा के घाव छेड़ फिर
किस सुदूर जीवन की स्मृति में
भिँगो रहे हो यों छिन-छिन पर
लोहे का शीतल कठोर स्तर ?

किस भूले गायन की कड़ियाँ
किस मधु-स्मृति की बिखरी लड़ियाँ
तेरे मन को खींच रहीं इस
पत्थर के बन्धन से बाहर ?

बाहर मुक्त, उदार जगत में
इठलाते सौरभ के पथ में
कुछ नयनोत्सव सा लगा रहीं
किरण-वधूएँ चमक चमक कर !

अन्दर, मृति-शीतल कठोर इस
पत्थर के बन्धन में बेबस
मन की अतृप्त आकांक्षाएँ
चूर चूर हो जाती हैं इन
जड़ दीवारों पर टकरा कर !

अरुण प्रभात

अरुण प्रभात! अरुण प्रभात!
दिग्वधुओं के शून्य भाल पर
जीवन की कुंकुम–रेखा बन
युद्ध - कालिमा - लिप्त गगन में
नव अरुण प्रभात! यह अरुण प्रभात!
मृत–जनास्थि–पर्वत–शिखरों पर
ध्वस्त नगरियों, खण्डहरों पर
स्वर्ण – तूलिका से आशा के
चित्र बनाता अरुण प्रभात!
खून और आँसू के कीचड़
बीच खिला जीवन–जलजात!
मन्द सुगन्ध वायु में रह रह
नूतन जीवन - समारोह यह
आज पुरातनता है दुस्सह
शोषण का अध्याय अन्त है
अब से बस स्वच्छन्द बहेगा
मधुर गीत सा दक्षिण वात!
अन्ध - रात्रि की कारा टूटी
आज मुक्ति का अरुण प्रभात!

वे मानव !

विश्व के ज्वाला – सागर में जब
वायु की तप्त लहरें उफन रहीं,
शूकर भी जब गन्दे पानी में लोटते हाँफ रहे,
लो देखो, वे मानव अर्ध-नग्न, धूलि-मग्न
जीवन के राज–पथ का करते निर्माण
देकर अपने प्राण।
अपने निश्वासों से झाड़ – पोंछ
अपने श्रम - जल से करते छिड़काव।
(नंगे सिर ! नंगे पाँव !)
कल उसी पथ पर से निकलेगा
मधुर मृदुल कोलाहल स्वर – गुञ्जित
नव हासोल्लास — काकली – कूजित
सभ्य जगत का मुखरित कारवाँ।
चहल - पहल से दिशियां गूँजेंगी,
तड़ित – स्पर्श से काँपेगी हवा।
वैभव की रानियाँ कञ्चन-रथ पर चढ़ जाएँगी
मदमाती हँस हँस बल खाएँगी—
विकल-सुरभि से समीर में सित सिहरन भर,
उन्मन, चकित, प्रकंपित, पुलकित कर।
क्या जानें, वे अल्हड़ सुन्दरियाँ कि उनका पथ
था क्यों इतना सरल, मृदुल, समतल ?

तेरी निशानी

सबेरे सबेरे मुझे मिल रही आज तेरी निशानी!

उनींदे गगन में नया जागरण ले उषा-राग फैला,
अँधेरे जगत के जगे भाग, देखो, लगा ज्योति—मेला,
धरा के मलिन धूलि-कण भी विहँसते कनक-आवरण से
हुई लाज से लाल सागर—क्षितिज की मधुर मिलन-वेला।
मचलता, सुमन से हँसी—खेल करता, मलय पवन चलता
पवन में सुरभि—साँस तेरी सुनाती हृदय की कहानी!

मिली आज के दीप्त नभ में तुम्हारे दृगों की ललाई,
मृदुल उँगलियों के परस से किरण ने दबी सुध जगाई,
उभरती नई हो जलन के सहारे तृषा आज मेरी
मुखर विश्व—स्वर बीच किसने हमारे हृदय की सुनाई?
खिले फूल की पँखड़ियों पर जगी क्या नवल इंद्र-धनु सी
करुण मुस्कराहट व्यथा-पूर्ण तेरी तुहिन-अश्रु सानी!

कहाँ विश्व में कुछ रहा जो कि अब भी निराशा भरा ही?
कहाँ जो छलकती नहीं ज्योति-मधु-मय हृदय की सुराही?

सुगम दीखता यह कठिन श्रम भरा जिन्दगी का अगम पथ
खुशी से भरे गीत गाते सुनो तो थके यदपि राही !
मधुर हर्ष-कलरव गगन छू रहा चेतना की लहर सा
हृदय की पुकारें सुनाई पड़ीं आज जग की जबानी !

सजा रश्मि-पट से मृदुल गात अपना जगी वासना चिर !
नए दिवस के साथ बढ़ती नई हो पुरानी तृषा फिर;
मुखर जागरण में छिपा मुख विहँसती निशा—सुप्ति—गाथा
अचिर नित्य-नूतन रुदन में मिला है उसी गीत का स्वर !
उठा जो सबेरे दिखाई पड़ा फिर लहरता, विहँसता
अनेकों शिशिर झेल कर भी हरा ही प्रकृति—वसन धानी !

समय की भसम में दबे थे निठुर पीर—अंगार मेरे,
सघन धूलि-तह में मलिन पड़ रहे हृदय—शृंगार मेरे
जगे पुनः देखो नई चमक लेकर, नई ज्वाल पीकर
उषा-ज्योति-से झलमलाते व्यथा के कनक-हार मेरे !
निशा-क्रोड में मैं लुटे फूल सा था अकिंचन, भिखारी—
सबेरे बना मैं खिले फूल सा कवि, सुरभि—गीत दानी !

हृदय - तिमिर में आज मेरे उतरती अरुण-ज्योति तेरी;
निराशा-कलुष की फटी केंचुली खिन्न, अवसाद घेरी,
मधुर - ज्योति कर से रही गुदगुदी फैल सब अंग मेरे
चली भाग नभ से विफल मृत्यु-निशि की शिशिर सम अँधेरी !
खिला आज मेरे नयन में नया ही उषा-राग अनुपम
कि जिसके कभी हो न सकते जगत के निखिल प्रात सानी !

बदली की रात

और काली हो गई है रात, बदली छा रही है।

बुझ गए सूने गगन में टिमटिमाते से सितारे,
बन्द हैं सब द्वार, घर-घर सो रहे जन सुध बिसारे,
विजन पथ, सुनसान गलियाँ, शाँत नगरी ऊँघती है,
पड़ रहे कुछ दीन-जन पेड़ों तले आँचल पसारे;
वायु की उन्मन तरंगों पर उतरती, मन्द तिरती
रात के भूले सुमन की गन्ध धीरे आ रही है !

बैठ खिड़की के निकट लघु दीप की उज्ज्वल विभा में—
भार देकर कुहनियों पर हाथ में पुस्तिका थामे
कौन कविता पढ़ रहीं तुम, बोल, किस रोचक कहानी
में लगा तेरा हृदय इस मधुर अँधियाली निशा में !
बोल सुन्दरि ! कौन आकर्षण तुझे यों खींचता है ?
नींद पलकों से कसक वह कौन दूर भगा रही है ?

या किसी निर्मम-हृदय प्रिय की रही हो इन्तजारी ?
यह बहाना है छिपाने का हृदय की बेकरारी ?

*

चौंक मत उठ, वह हवा ही द्वार तेरे खटखटाती,
बोल, क्या कल्पित-कथा में ही कटेगी रात सारी ?
पूछ ले, तेरी कहानी स्पष्ट ही तुझसे कहेगी—
'व्यर्थ जीवन में प्रतीक्षा, मृत्यु कर पीछा रही है!'

चीर परदा मधुर तम का और ममता का कुहासा,
उदित होगी प्रात—अपजय-रक्त-रंजित सी निराशा।
नग्न जीवन देख अपने आप को शरमा छुपेगा,
यदि रही अतृप्त खुद ही जल मरेगी वह पिपासा।
है प्रतीक्षा वंचना उस प्यार की, जो मर चुका है
क्यों थके स्मृति-प्रेत को नाहक कुरेद जगा रही है ?

देख, बाहर भटकता है एक राही निबिड तम में
प्रीत से बिछुड़ा, अकेला चूर जीवन-पंथ-श्रम में,
साथ उसके मार्ग-दर्शक एक दीपक भी नहीं पर—
आज तेरा दीप देता ज्योति उसके पथ अगम में।
ताकता सतृष्ण दृग से खुली खिड़की की दिशा में
ज्योति की किरणें जहाँ से आ उसे नहला रही हैं।

लक्ष्य अविदित, रात काली और बदली छा रही है,
शीत मारुत में सुमन की गन्ध भी अकुला रही है,
देख बाहर, एक राही भय, अनिश्चय—मय प्रलोभन
में फँसा, उसके हृदय में जाग विकल व्यथा रही है!
शाँत नगरी, सुप्त अग-जग, किन्तु तेरा हृदय जागा,
क्यों उसे आश्रय दिखाने में अभी सकुचा रही है ?

प्रकाश की पुकार

विक्षुब्ध विश्व—सिन्धु से विनाश की पुकार है!

प्रगाढ तिमिर-पटल से ढका हुआ दिगन्त है।
निगूढ प्रसव-पीर से धरा सकल ज्वलन्त है।
युगांत की अशांति से समस्त सृष्टि काँपती,
अनाथ मनुज जाति का समीप आज अंत है।
मनुष्य आज अन्ध सा बढ़ा चला टटोलता
प्रमाद्-पूर्ण गर्त्त से प्रकाश की पुकार है!

न आज अटल बुद्धि की प्रदीप्त ज्ञान-ज्योति है,
न आज मार्ग-दर्शिका अमोघ धर्मनीति है;
न राह आज सूझती, कहाँ कहाँ भटक चुके
मरुस्थली बना जगत बुझे प्रकाश—स्रोत हैं।
कहो किधर चलें अहो, जहाँ कुटिल निशा न हो
इसीलिए प्रभात के विहास की पुकार है!

जगत सकल कराहता भयंकरास्त्र — भार से
पिशाच खेल खेलते मनुष्य — मुण्ड — हार से

समाज के चरण तले अनाथ व्यक्ति दलित है
अबोध बाल खेलते अजान में अँगार से !
उजाड़ विश्व – पंथ पर, लहू – लुहान चरण धर
भटक रही मनुष्यता श्रमित, नमित सभार है ।

परन्तु दूर पार से पुकार एक आ रही
उजाड़ विश्व-विपिन से बयार एक आ रही
बयार में छिपे हुए भविष्य के सुस्वप्न हैं
विलुप्त बीज में छिपी बहार एक आ रही ।
अशाँति–सिंधु–मथन से सुधा–प्रकाश–आस है
इसीलिए विनाश में विकास की पुकार है ।

भविष्य स्पष्ट दीखता अतीत – पृष्ठ – लेख में
प्रगल्भ रक्त – ज्योतियाँ प्रदीप्त हैं हरेक में
मनुष्य आज क्यों बने निराश हो पराजयी
विषण्ण क्यों हृदय लगे विचार मीन-मेख में ?
अतीत का सँदेश ही भविष्य की अनल-शिखा
इसलिए ‘ मनुज ! न हो निराश ’ की पुकार है !

मनुष्य यह अजेय है, मनुष्य यह महान है
निकट निशांध - गर्भ में छिपा हुआ विहान है
इसीलिए बढ़े चले सपूत वक्ष खोल कर
कठोर यूप–काष्ठ पर कवोष्ण रुधिर–दान है
बढे चलो ! बढे चलो ! अजेय वीर सैनिको !
विनाश की विभीषिका प्रकाश का सिँगार है !

एकाकी

मलयानिल की मादक तरंग उस उपवन पर जब फिर जाती
कुसुमों से बोझिल हर डाली पागल सुगन्ध से घिर जाती
उसके इक उजड़े कोने में मैंने देखी थी एक लता
जो हर झोंके में निरावरण थी उन्मन सिहर सिहर जाती !

जीवन - प्रभात की लाली जब सारी जगती पर छिटक गई
तरु-भवन तथा गिरि-शिखरों पर सोने की झालर लटक गई
मैंने देखा, पथ के हारे दुर्बल यात्री की आँखों में
जीवन-संध्या की चिता-ज्वाल की रक्त-किरण इक भटक गई !

संध्या-कल-कूजित आँचल में घर लौट रहे थे सब प्राणी
उठ किलक किलक निज श्रमित पिता की करते बच्चे अगवानी
जीवन-वेदी पर अगरु-धूप सा घर घर से उठ रहा धुँआ,
मुँह छिपा किंतु धूसर-पट में बैठा था कोई अभिमानी !

रजनी की नीली गोदी में जब सृष्टि श्रांत होकर सोती
मारुत में छुपी गन्ध-मधु सी थी प्रेम-केलि चुप चुप होती
उस मधुर शाँति की चादर में मैंने देखा था एक हृदय
जिसमें बाडव सी विकल व्यथा थी आठ आठ आँसू रोती !

अन्तिम चितवन

भुला न पाया अन्तिम चितवन!
एक निमिष जिसमें समा गया दीर्घ कठिन यह सारा जीवन !

पल भर धड़कन रुकी हृदय की, पल भर जग सारा निश्चल था
उमड़, उमग पीडा के मरु में सूख रहा नयनों का जल था
तीव्र-पवन – प्रतिकूल – गामिनी नौका पर उड़ते झण्डे सा
विवश चरण आगे बढ़ने को, पीछे मुड़ता हृदय विकल था
उर की तूफानों का परिचय देता था साँसों का स्पंदन !

अरे, विकल मानव – जीवन! क्या शेष तुम्हारी यही कहानी
अचिर मिलन की वेदी पर क्या प्रेम चढ़ेगा ही कुर्बानी !
तो फिर निरुद्देश्य जीवन की यात्रा का क्या संबल होगा ?
बहलाएँगे बेकल मन को कहो, कौन सी दिखा निशानी !
जीवन-तप के फल होंगे क्या ये स्मृति के दो चार मधुर क्षण !

वह चितवन जिसमें युग युग के जीवन की अतृप्ति भरी थी
जिसमें बन्धन – विवश हृदय की अमर वासना – प्यास हरी थी
एक अपूर्व कसक यौवन की, जलन भरी विष की प्याली सी
वह चितवन जिसमें नयनों की मधु-रहस्य – नीलिमा भरी थी
क्षण में उस शाश्वत मुद्रा से जड़ित हुआ सब तन-मन-जीवन।

जीवन भर की रूप – पिपासा क्या पल भर में बुझा सकोगी?
यह वर लेने क्रूर काल को किस उपाय से रिझा सकोगी?
'बरसों के तिल तिल की ज्वाला पल में धधक भभक हो शीतल'
ऐसी कोई राह विश्व को बोलो, क्या तुम सुझा सकोगी?
किन्तु, असम्भव यह जग जाना, इतना करुण नहीं विधि का मन!

समय – प्रवाह राह दोनों की पल पल अलग कर रहा, लेकिन
उस चितवन का लिए सहारा जुड़े हुए थे दोनों जीवन!
विधि की भीषण निर्दयता का दे प्रत्युत्तर एक व्यंग से
उस चितवन के ही बल पर तो बने आज भी निकट युगल-मन
दीर्घ-अवधि से भी जीवन के फीके पड़े नहीं तीखे क्षण!

लाख लाख जंजालों में फँस जीवन भार हो उठेगा जब
पग पग की उलझन में अटका धीरज हृदय खो उठेगा जब
अविश्वास, भीषण प्रवंचना के लाखों तीरों से छिद छिद
छलनी सा जर्जर निराश मन लुक-छिप मौन रो उठेगा जब
वही नजर मैं याद करूँगा पाने को कुछ मधुराश्वासन!

उसी स्रोत से बहा करे नित अमर तृप्ति की मधुमय धारा
खींच बढ़ाए व्याकुल मन को आगे आगे वही इशारा
अरे हानि क्या, घिरती आए और सघन हो रात अँधेरी
निबिड क्षितिज पर जला करेगा मुसकाहट भर एक सितारा
विकल नयन की एक किरण वह सदा करेगी पथ-निर्देशन।

मरण की छाया में

काले बादल घिर घिर आए, नैश मरण की छाया छाई।
कौन चुकाएगा बोलो तो जीवन-सागर की उतराई ?
दूर दूर हो मौन हो गया जगती का ओछा कोलाहल
और बचा सुनने को केवल सागर का प्रलयङ्कर कल-कल
तड़पन भरी तरङ्ग-पाँत में, इस कराहते विकल वात में
अँधियाली निस्तब्ध रात में, आज एक ही स्वर है विह्वल
किसने हिम-शीतल तन्द्रा को चीर हृदय की पोर-पोर में
जागृत शोणित की धारा की उच्छल स्वर-रागिणी बजाई ?
भूतल सब निस्तब्ध पड़ा ढक काली चादर से मुँह अपना
इसकी मुँदी पलक में जगता दूर कहीं क्या कोई सपना
कहो, किसी ने देखा है क्या सागर पार क्षितिज के तट पर
घूँघट हटा, छटा दिखला कर विद्युत का फिर फिर लुक-छिपना ?
इस अनंत विभ्रांत विश्व के किस अशांत एकांत कोण में
जग कर यह पीडा की कंपित लहर यहाँ तक तिरती आई ?
यह विह्वल पुकार छा लेती जीवन और मरण के युग-तट
उछल रहा हृत्पिंड काँपता, सुन कर उन चरणों की आहट
अभी अभी पीडा जगती है सुख की चिर मूर्छित तन्द्रा से
जिसकी प्रलय-सेज पर अब तक वह बदल न पाई थी करवट
विश्व-व्याप्त इस अन्धकार के प्राण-हीन कलुषित विकार में
तडित-तार सी एक चेतना की तरङ्ग दौड़ी, लहराई !

जीवन के इस जटिल सूत्र की टीका कौन करेगा, बोलो
कोई है इस अन्ध-कक्ष के पार, द्वार अब जल्दी खोलो
थर्राती है रात अँधेरी, जल में बजी अतल की भेरी
कहो, कूच करने का दम है, जरा हृदय की गाँठ टटोलो !
गरजा सागर 'फिर जा राही' लहरों की ललकार सुनो तो—
दुर्बल मानव की सत्ता से आज प्रकृति की छिड़ी लड़ाई !
घिरे धुंध, चलने दो अंधड़, बुझे आखिरी तारा-दीपक
भाग्य-लेख लिप-पुत ले तम से, मानव फिर भी बढ़े बेधड़क
बचा रहे विश्वास—अंधपट के उस पार अकंपित निश्चल
दो नयनों की ज्योत देखती राह उसी के लिए एकटक
इसीलिए फड़कती भुजाएँ, दीप्त-नयन, विश्वास हृदय में
क्षुब्ध-प्रभंजन, क्रुद्ध-सिंधु में सुन पड़ती मीठी शहनाई।
जाग, जाग जीवन की आशा, मानव की दुर्दम अभिलाषा
जाग मधुर किलकार, चीर कर मूक दैन्य का अंध कुहासा
दूर क्षितिज की श्याम-पटी हो रक्त-राग-रेखा से रंजित
दाँव चढ़ा सर्वस्व फेंक दे अरे अभागे, फिर से पाँसा
टूटे दीर्घ प्रतीक्षा की इस दुसह शृंखला की पल-कड़ियाँ
टूटे कारा, छूटे कैदी आज रात को मिले रिहाई।
तू तृण सा तरङ्ग-माला पर तिर जा रे ! बन एक बुलबुला
तेरी क्या उतराई होगी, तुझे सिंधु ही पार ले चला
तू निर्भय निश्चिन्त हृदय से हर्ष-गीत अब जी भर गा ले
क्षुब्ध-सिंधु से, प्रलय-प्रभंजन से अपना भी क्षीण-स्वर मिला
गा-गाकर थक कर सो जा रे ! जब तक तू फिर जाग उठेगा
तेरी अभ्यर्थना करेगी वहाँ पूर्व की नयन-ललाई !

कुमुद का खिलना

ओ नयनों की नीली चितवन! ओ पलकों की पुलकित झपकी!
ओ तन की रस-परवश सिहरन! ओ सपनों की हलकी थपकी!
ओ गद्‌गद स्वर के कल-कूजन, चिर-परिचित, पर निपट अपरिचित!
ओ लज्जा के रक्तिम चित्रण विस्मय की तूली से विरचित!
कुछ गीली, ढीली सी अलकें ललकीं, ललित भाल पर बिखरीं,
ऊषा-छवि के स्वर्ण-निकष पर विरल तमो-रेखा सी निखरीं!
आज तुम्हारे लोल कपोलों पर मादक अरुणोदय छाया,
मत्त लालसा की घाटी में धूप-छाँह सी मोहक माया!
चीर पहिर सित, धौत विभा का ले अधखुली किरण की काया
रानी! तेरी मुसकानों में कैसा जादू आज समाया?
पल पल झलमल झलक छलक कर किलक अधर के चिक से जग पर
सतरंगी मेहराब बनातीं थकित कामना के पग पग पर।
तेरा मौन मुखर है सजनी! आज लाज भी तनिक रँगीली
हर स्वर में गुञ्जन, तनु-लतिका के कम्पन में लोच लचीली;
यह उन्मद आनन्द हृदय में, लास चपल उत्सुक चरणों में
भरे प्रतीक्षा के अधीर युग कुछ भय-निष्क्रिय चुने क्षणों में,
जो मुँह खोल कुछ न कह सकती, वांछा-विवश चुप न रह सकती
छुई-मुई सी कलित कल्पना शब्दों का स्पर्श न सह सकती,

पर चुपके से फूल झुटपुटी के आँचल से बिखरा परिमल
भर देती निशि के पद-पद पर शबनम के भावुक चल-दृगजल।
यह कैसी खुमार मारुत में, किन सुदूर तीरों का कलरव
घोल रहा तेरे कानों में विस्मृति का नव उन्मन आसव?
कैसा ज्वार उठ रहा स्मृति की क्षितिज-व्याप्त-सैकत-शय्या पर
गत पथिकों के चरण-चिह्न सब क्षण में मिटा-बहा कर, धोकर,
किसे खोजती सी अलसाईं आँखें दीप्ति-धार सी भटकीं
अन्ध तिमिर के गन्ध-गर्भ में कल की छिपी कली पर अटकीं।

मृण्मय काया की सीमा पर भय-संशय-मय संध्या-सर में
आज चन्द्र-कर छूकर खिलता शाश्वत श्वेत कुमुद निज घर में।
एक वृंत स्थिर मेरु-दण्ड का, उठ अखंड जीवन-कर्दम से
मूल-वासना के पंकिल घन अङ्क-कुहर से, तम से, श्रम से
जाग ज्वलित ज्योत्स्ना में खिलता, अमृत की व्याख्या सा खुलता
भर गुञ्जार प्राण-वंशी में विकल वायु में तिरता, पलता
यह आनन्द तुम्हारे द्वारे प्रति दल पर लाखों रेखाएँ
दिव्य रूप-पट बुनतीं द्युति के मृदु तारों से निज तन छाए;
ये केशर-शर बींध विश्व की पोर पोर मधु की ज्वाला से
भर संजीवन-रस रग रग में देते पलट नियति के पाँसे।
कहो! कौन तुम ओ कल्याणी! किस जग से लाईं यह जीवन?
यह विद्युत-स्पन्दन, घन-गायन, ये प्रदीप्त क्षण, ये स्फुलिंग-कण?
मृत्युंजये! परस कर तुमको नाच रहा मिट्टी का पुतला
एक तीव्र आकर्षण में बँध आज गगन छूने को मचला;

अनुताप

क्या मैंने करने की सोची, क्या मैंने कर डाला ?
जीवन – रस के धोखे मैंने पिया गरल का प्याला ।

कितने ही अरमान-हौसले दिल में सजा - सजा कर आया
कितने मनसूबे गाँठे थे, कितने दीप जला कर आया
कवि-कर से कल्पना-शिल्प के स्वप्न-सौध गढ़ गढ़ कर लाया
चढ़ती ज्वार, हृदय की लहरों का मैंने सङ्गीत सुनाया
किंतु यहाँ आकर क्या देखा, उजड़ी थी मधुशाला
ढहे सौध, गुल थे चिराग, सुख में आया मतवाला !

चला बवंडर कैसा जिसने समाँ पलट डाला जीवन का
एक हवा का झोंका जिसने दिया बुझाया रोशन मन का
जादू चला भाग्य का, पल में सोने का संसार उजड़ कर
बना धूल मुट्ठी भर जिसको उड़ा ले चला जोर पवन का
सुदृढ जिसे समझा वह टूटी छिन्न मोह की माला
स्याही फिरी दमकते मुख पर भाग्य क्षितिज था काला ;

सोचा—अनुनय और विनय से रूठा भाग्य मना पाऊँगा
आँसू से धो शिला खुरदुरी जीवन की चिकना पाऊँगा

सोचा था, जीवन-प्रतिमा के सूने अँधियाले मन्दिर में
जा चुपके से मूक प्रार्थना का इक दीप जला पाऊँगा
पर क्या देखा, बँधे द्वार सब, लगा हुआ था ताला
देर हुई, छूटा रथ स्वर्णिम दिशि को जाने वाला।

मैंने हाहाकार हृदय का गीत—स्वरों की ओट छिपाया
जब दिल था बेजार रो रहा तब मैं ओठों पर मुसकाया
जिसकी विकल प्रतीक्षा में इस तन के रोम रोम जगते थे
उसे देख मुँह मोड़ चला मैं आत्म-वंचना में भरमाया
आज घेरती जीवन—वन को पछतावे की ज्वाला
मक्खी क्यों न उड़े कितना ही यह मकड़ी का जाला।

लोट रहा था हृदय धूल में, गर्दन तान खड़ा था फिर भी
टूट रहा था जीवन-सपना, मैं आन पर अड़ा था फिर भी
जीवन दाँव लगा, काँटे पर प्रेम और अभिमान तुले थे
रहा प्रेम सर्वस्व, मान का भारी ही पलड़ा था फिर भी
हाथों-हाथ बिदा कर सुख को मैंने दुख को पाला
अहङ्कार छल गया मुझे कर केवल भोला-भाला।

हाथ उठे कर शून्यालिंगन, आँखें उठीं देखने तम को
उर आक्रोश कर उठा पाकर चारों ओर वंचना-भ्रम को
उठी रक्त की बाढ वक्ष के लोह-बाँध से जा टकराने,
फिर हहरा गिरने, छूने का कर प्रयास तव पद-विद्रुम को

वह मुसकान छिपी अपने पर एक व्यङ्ग बन काला
चली गई तू, खोज थका मैं चरण-चिह्न की माला;

समय-प्रवाह अनन्त, मिलेगा किंतु कभी क्या ऐसा ही क्षण
जिसमें विधि के कच्चे तागे पर झूलेगा सारा जीवन
जिसमें हार-जीत जीवन की एक शब्द पर निर्भर होगी
पर वह शब्द फूट पायेगा क्या अवाकता का तज बन्धन?
क्या छिल छिल कर फूट बहेगा जीवन-पद का छाला?
नाश लता का कर पिघलेगा क्या विषाद का पाला?

कहाँ साँत्वना जीवन में, यह घाव घाव ही है भर कर भी
जाग उठेगी विषम यन्त्रणा फिर फिर नूतनतर मर कर भी
रोना दिल-बहलाव बनेगा जिस भीषण पीडा के सम्मुख
उसकी कसक मरोड़ उठेगी मन को समय समय पर फिर भी
फिर किस पार सजेगी जीवन-भग्न-स्वप्न-मधु-शाला
ऋण-शोधन का शेष-काल अब कैसे जाए टाला?

(गीत - मञ्जरी)

(१)

मेरे प्रेम! विदा कर दो अब!
अभी नहीं प्राची-दिशि अरुणा, जागा अभी नहीं खग-कलरव!
वह प्रभात की प्रथम मधु-किरण
रक्त - राग - रंजित कृपाण बन
मेरा मृत्यु - सँदेश लिखेगी, कर देगी विक्षुब्ध हृदय तव!
और मिलन के पल न शेष हैं
अवधि कृपण है, दूर देश है
काल अनन्त - प्रवाह, नहीं क्या कभी पुनः होगा मिलनोत्सव ?

(२)

जीवन-पथ के किसी मोड़ पर तू क्षण भर के लिए मिली थी !
तेरे जीवन का राज-यान,
था लक्ष्य-हीन मेरा प्रयाण
क्षण भर तो सामने हुए थे, चितवन भर के लिए मिली थी !
तेरा रथ था धूल उड़ाता
मुड़ मैं क्यों न देखता जाता
तेरे वन की सकल सम्पदा क्षण में मेरे हिए खिली थी !
पथ अनन्त, जीवन है चंचल
वह चितवन राही का सम्बल
शीस झुकाए चला चलूँगा, सोचूँगा, वह कौन मिली थी ?

(३)

सोच रहा, चिर काल-कोष से लूट सकूँगा न कुछ मिलन-क्षण ?
है अपार जीवन - मधु - सागर
मैं प्यासा पाऊँ न बूँद भर ?
तेरे चिर कुसमित उपवन से तोड़ सकूँगा क्या न इक सुमन ?
है उदार नभ, जगत उजाला
मेरे लघु मन का अँधियाला
तव चितवन की एक किरण से क्या न ज्योतिमय जाएगा बन ?
पथ अनंत, दिन अधिक बचा ना
सबको दूर देश है जाना
पर मैं तुझसे बोल सकूँगा क्या न विदा के एक दो वचन ?

(४)

मूढ रे ! कर जीवन से प्यार !
तम से, श्रम से, जीवन-श्रम से मान न ले तू हार !
वे ज्वलंत मणियाँ जीवन की, समझ न उन्हें अङ्गार,
रक्त - पलाश - वासना - सुमनों से कर ले शृङ्गार !
चिंता क्या यदि घिरता नभ में निश्चेतन नीहार,
रवि की किरणें निश्चय उसको कर जाएँगी पार !
दुस्सह आज लदा जीवन - वन पर पतझर का भार
इसी मंच पर कल थिरकेगी हँसती नयी बहार !
गति अनंत, जीवन अनंत है, यहीं मरण की हार,
राही जन की कठिन थकन के श्रम - कण ही उपहार !

(५)

मृत्यु नाचती विश्व - कमल पर !
अनस्तित्व - सागर के जल में
जीण-शीर्ण दल गिरते झर-झर !

उसके कङ्कण क्वणित गगन में
नूपुर मुखर तरङ्ग - पतन में
क्षितिज - व्याप्त - तम - अवगुंठन में

छिप छिप निज उन्मत्त हर्ष से
झूम रही प्रति पद बल खाकर !

उसकी स्मिति चमकी चपला बन
अशनि - पात सङ्गीत - प्रति - ध्वनि
काम - प्रपूरित उल्का - चितवन

नृत्योत्तेजित श्वास — प्रभंजन
जग तृण सा ले जाए बह कर !

जीवन अपने चन्द्र - प्रकाशित
कक्ष बीच सोया स्वप्न - स्थित
शैशव का भोलापन सस्मित

उधर नृत्य उन्मत्त मृत्यु का
कंपित करता है शून्याधर !

(६)

कुछ लिखने का होता मन !
मनो-गगन में किरण-वक्र-गति
अस्फुट होता स्वर - स्पंदन !

स्तब्ध चंद्रिका-निशा मनोहर
फैला असीम नीला अम्बर
लहरों में तंद्रिल जीवन-स्वर

मीठी झपकी गहन नींद की
गोदी में लेते जग - जन ।

विकच सुमों में हलकी सिहरन
मधुर सुरभि से मारुत उन्मन
यह तन्द्रा का मृदुल आवरण

चीर दूर वन-पथ में कोई
पथहारा करता गायन ।

उलझा स्वप्नों में शांत - हृदय
जीवन के पल हैं आज सदय
स्थिर है आशा का ज्योति-निचय

किंतु किसी धुँधले कोने में
होता पीड़ित स्मृति-कम्पन ।

मृत्यु-तल्प पर लेटा जीवन !
करुण कण्ठ से बोल रहा है—'खोलो मेरे सारे बन्धन !'

अन्ध-कक्ष के ये वातायन
बँधे द्वार खोलो अब तक्षण
मुझको सुनने दो आमन्त्रण
धीरे धीरे मृदुल स्पर्श मिस कह जाता जो मन्द समीरण !

श्याम गगन के गहने सारे
देखूँ वे चमकते सितारे
जो किरणों के हाथ पसारे
दूर गँभीर विनील देश में बस जाने को कहते क्षण क्षण।

क्या कहते हो, बादल छाये
भले समय पर तो वे आये
बिजली की मुसकान छिपाये
सूखी जगती के उरतल पर बरसा जाते शीतल रस-कण।

मुक्त वायु को बह आने दो
खुली प्रकृति की छवि पाने दो
हरी घास पर सो जाने दो
एक बार आँखें भर देखूँ धरणी का शृङ्गार चिरंतन !

क्या सोच रहे तुम भाई !
शीतल सजल मधुर इस दिन ने स्मृतियाँ कौन जगाईं !

भरी बदरिया घिरी गगन में
तनिक नमी पश्चिमी पवन में
मधुर अलसता है तन मन में
स्निग्ध प्रकृति में बाज उठी है पीडा की शहनाई !

शांत हुआ क्षण भर संघर्षण
खींच रहा तेरा व्याकुल मन
स्थूल जगत का चीर आवरण
जहाँ भावना की उपत्यका में हरियाली छाई !

जहाँ अभी जीवित आकर्षण
उर में है आशा का स्पंदन
और जहाँ बाधाओं में जल
जीवन की उफनी रस-प्याली शुष्क न बनने पाई !

आज तुम्हारी दो आँखों में
चिंता-विषफल की फाँकों में
मधु-विषाद की काली छाया
किसी सजल स्मृति की घनमाला उमड घुमड घिर आई !

(९)

क्यों बैठा तू शीस झुकाए !
जीवन के जागृत श्मशान में आशाओं की चिता जलाए !

तेरे चारों ओर लालिमा
से अनुरंजित विकट कालिमा
जिसके अस्पष्ट आलोक बीच
नर्त्तन करती हैं बन-ठन कर काली रहस्य की छायाएँ।

तुझ से थोड़ी ही दूरी पर
नैश तिमिर का गर्भ चीर कर
बाहर आने को संघर्षण
करता युग-शिशु, प्रसव-वेदना की मरोड से स्तब्ध दिशाएँ !

अंधकार के उस अँचल में
जग के भाग्य-विधायक पल में
जीवन और मरण के रण में
अपना अंतिम दाँव लगातीं ज्योति और तम की सेनाएँ !

तेरे उर में भी संघर्षण
अविश्रांत विद्रोही कंपन
फिर क्यों तू बैठा मन मारे
इस उन्मत्त प्रलय-बेला में स्तब्ध शिला सा शीस झुकाए !

(१०)

मैंने देखा एक ठूँठ वह !

खड़ा रहा वह शून्य डगर पर,
किसी ध्वस्त वैभव का खँडहर
जग की मतवाली हलचल से
हो विरक्त ज्यों गया रूठ वह !

ऊपर नीला अंबर फैला
नीचे भू का आँचल मैला
उस अनंत जीवन के पथ पर
रहा किसी की जोह बाट वह !

ऋतुएँ आएँगी, जाएँगी,
कुसमावलि खिल मुरझायेगी
परिवर्तन - मय सत्य - जगत में
अचल रहा बन एक झूठ वह !

जीवन की लहरें उठ प्रतिपल
टकराती आतीं इस तट तल
पड़ा रहा पाषाण - मूर्ति सा
चिर रहस्य-मय मौन गूढ़ वह !

(११)

हाँ, मैंने भी कभी किसी से प्यार किया था !
जड-जीवन की शुष्क शाख पर फूलों का शृंगार किया था।

कभी किसी के नील नयन युग
प्रलय-जलधि से छा लेते जग
मन की नैया करते डगमग
कभी किसी की चितवन भर से हरा-भरा संसार किया था।

वह अमूल्य मणि जिसकी छाया
रचती सुख-सपनों की माया
निकट रही, मैं जान न पाया
अनजाने मैंने जीवन में सकल सुखों का सार पिया था !

चारों ओर आज जब मेरे
जगतीं जीवन की ललकारें
विफल शून्य की विकल पुकारें
पूछ रहीं—तूने भी उर पर कभी मधुर वह भार लिया था ?

आज चल रहा मैं एकाकी
निर्जन पथ, झुटपुट सध्या की
किंतु नहीं भूली वह झाँकी
मैं पछताता, क्यों न हृदय ने उस सीमा को पार किया था !

(१२)

देख न मुझको अपलक सजनी !

तेरे उन विनील नयनों से
निकल सुहाग-पराग-कणों से
तडित-स्पर्श मेरे अंगों को करते उन्मन सपुलक सजनी !

उनकी नील भयद गहराई
देख दृष्टि मेरी चकराई
गूढ मौन उस चिर-रहस्य पर धार पलक का कंचुक सजनी !

अपनी नग्न कामनाओं पर
मैंने ओढी हलकी चादर
चीर उसे मन की मिट्टी में क्यों बोती तुम कंटक सजनी !

गूँज रही आत्मा में मेरी
भीषण मौन चुनौती तेरी
सर्वनाश की मत पुकार कर, सोच, समझ छिन भर रुक सजनी !
देख न मुझे एकटक सजनी !

मैं गाऊँगा हाँ, गाऊँगा !
जीवन की निस्तब्ध निशा में सोता ज्वार जगाऊँगा !

करने दो उनको कोलाहल
जो वैभव मदमाते पागल
इस निर्लज्ज नग्न पशु-बल-छल
के तांडव-रव से ऊँचा ही अपना कंठ उठाऊँगा !

युग युग के प्रसुप्त जग जाएँ
आँख मलें, देखें, पछताएँ
वे भी अपना कंठ मिलाएँ
सोती मानवता की आँखों में दुस्वप्न बन छाऊँगा !

मेरा गायन रहे उपेक्षित
मेरी पीडा रहे अलक्षित
फिर भी मैं एकाकी अविरत
नव प्रभात की अरुण किरण को निशि-सँदेश पहुँचाऊँगा !

पतन-कलुष-मय अन्ध गगन में
जीवन के उजडे आँगन में
अपने कटु ज्वलंत गायन से
मैं जगमग उल्का की जलती एक लकीर बनाऊँगा !

तेरी पूजा किया करूँगा !
जाने या अनजाने, मैं तो इसी आस पर जिया करूँगा !

मेरे जीवन–जल की धारा
सदा करे पद–पद्म पखारा
दो घूँटें चुपचाप कभी तो चरणामृत की पिया करूँगा।

दुस्सह तडित–तेज की ज्वाला
पर बुन कर सपनों का जाला
मैं तेरी अनंत सुषमा को, डरते ही छू लिया करूँगा।

दीपित कर सुन्दर को शिव में
देकर रूप हृदय की छवि में
गूँथ गीत के हार अनामक तुझे भेंट कर दिया करूँगा।

अनजाने में कभी तू अगर
मुझ पर देगी फेर नजर भर
महा–प्रसाद समझ मैं उसको सिर-आँखों पर लिया करूँगा !

जीवन के कंटक–मय पथ पर
बन मैं स्वयं दीप लघु, नश्वर
संसृति की इस निबिड निशा में तव पथ ज्योतित किया करूँगा।

मैं तेरे सम्मुख क्या गाऊँ ?
गीत गीत में समा रही तू ; मैं तुझको क्या गीत सुनाऊँ ?

छू छू तेरे मदिर श्वास - कण
सिहर सिहर उठता मेरा तन
गद्‌गद स्वर की निरी विकलता कैसे तुझसे बोल, छिपाऊँ ?

केश-पाश का मधु-परिमल भर
उन्मन वायु चल रही लद कर
दीर्घ—श्वास के एक प्रलोभन से मन को किस तरह बचाऊँ ?

तेरा ध्यान सकल अपने पर
केंद्रित पा मैं होता नत-शिर
सकुज पसीज उठा सारा तन कहो, कहाँ से दृढता लाऊँ ?

दिव्य उपस्थिति का मद देकर
लेती मेरी सब सुध-बुध हर
फिर मैं रूठे अहङ्कार को कौन जुगुत कर लौटा लाऊँ ?

मन-मौजों पर गिरता उठता
लाख बार बन-बन कर मिटता,
पर इस असफलता का कारण किन शब्दों में तुझे जताऊँ ?

(१६)

चल रे मानव, आज अकेला!
तू हँस हँस निर्द्वंद खेल रे जीवन और मरण का खेला!

आज खड़ा तू चौराहे पर
सङ्गी—साथी गए बिछुड़ कर
प्रात—गगन हँसता है सिर पर
चारों ओर अनंत दिशाएँ, आगे जीवन का पथ फैला!

विगत रात्रि का स्मृति-संभ्रम भर
मलिन न हो निज अंतर-अंबर
तम के आँसू शबनम पीकर
देखो, ऊपर ही चढ़ता रवि मोह-छोह का तोड़ झमेला!

तू जीवन भर रहा प्रवंचित
सुख से, एकाकी, चिर-लांछित
किन्तु रहा धारे अपना व्रत
फिर क्यों आँसू बहा रहा जब आज बिदा की आई वेला!

(१७)

जन-सागर के नीरव तट पर,
जिस पर कुहरे सी छाई है अंधकार की काली चादर !

सोच रहा मैं दर्शक बन कर
क्यों रुक गया गान प्रलयङ्कर
मौन हुआ सहसा गुंजित स्वर
किसने जादू की लकड़ी से इन्हें सुलाया अभिमन्त्रित कर !

रजनी के इस अंध—हृदय में
इस अनन्त तम-भ्रम-संशय में
अरे, कहीं क्या जगती होगी
कोई दीप-शिखा जगती का इक उजड़ा कोना ज्योतित कर !

जीवन की बीहड़ समाधि पर
शेष-चिह्न पीडा का बन कर
कोई कुसुम खिल रहा होगा
अपनी छोटी सी दुनिया को बस, पल भर उन्मन, सुरभित कर !

(१८)

जब मैं मन मारे बैठा था !
जीवन के उन्मत्त द्यूत में अंतिम पण हारे बैठा था !

तूने धीरज मुझे बँधाया
संघर्षण का पंथ दिखाया
आगे बढ़ने को उकसाया
जब मैं घायल हो तन-मन का सब होश बिसारे बैठा था !

मैं तेरा अवलंबन लेकर
गत विषाद की याद भुला कर
शेष शक्ति की ज्योत सँजो कर
बढ़ा पुनः सङ्कट-मय पथ पर, मैं जो कि किनारे बैठा था !

बुझा दीप, बदली आई घिर
मैंने देखा पीछे फिर कर
किंतु कहाँ तुम रहीं वहाँ पर
बस, घायल मरते पंछी सा मैं पंख पसारे बैठा था !
जब मैं मन मारे बैठा था !

ओ मेरे जीवन की रानी !
क्षुब्ध मानवी हृदय-स्पंद की उज्ज्वल अमर कहानी !

जगती के सूने तम-पट में
युग-सागर के उजड़े तट में
घोर निराशा के मरघट में
इस जीवित शव के जीवन की एक सजीव निशानी !

सपने जो सब मैंने खोए
काँटे जो मैंने खुद बोए
जो आँसू के हार पिरोए
फूले वे तेरे फूलों में ओ वसन्त की वाणी !

खोया दाँव लगा जीवन का
पुरस्कार पाया क्रंदन का
क्या था हृदय-ताप-प्रशमन का
मार्ग ? यदि न ढलता तेरे नव-नील नयन का पानी !

मूढ़ हृदय की गूढ़ व्यथाएँ
जीवन की सब पाप - कथाएँ
कीचड़ सी तन में लिपटाए
स्वामिनि ! तेरे सम्मुख झुकता दीन-दास यह मानी !
ओ मेरे जीवन की रानी !

(२०)

ज्योत हमारी हमसे छिन कर जाती है, लो, जाती है !

जिस घर का वह रही उजाला
उसको घेर रहा अँधियाला
मूक शोक की काली छाया सिर पर फिर मँडराती है !

देख रहे चुपचाप खड़े हम
देख रहे म्रियमाण पड़े हम
जगती के विस्तृत तम में वह छवि ओझल हो जाती है !

कैसे कहें कि मत जाओ तुम
कैसे तुम्हें रोक पाएँ हम
दो खारी घूँटें पी आँखें पथरा कर रह जाती हैं !

अन्त आज आशा का अभिनय
सुख-दुख, हास-रुदन का विनिमय
निशि की काल-यवनिका अपना घन-आँचल फैलाती है ।

(२१)

आशा का दीपक जलता है !
दुख की अँधियाली गोदी में चिर-रोगी शिशु सा पलता है।

हर एक हवा के झोंके में
है काल झपटता धोखे में
फिर भी यह प्राण बचा लेता, हर बार नियति को छलता है !

पर यह क्या देगा उजियाली ?
इसकी शोणित की सी लाली
बस, निशि को रँग कर रह जाती, पर यही किसी को खलता है !

दीपों की वे हँसती पाँतें
वह कलरव, सब बीती बातें
अब तो अपने तम-मय पथ का यह पाँथ अकेला चलता है !

जब यह भी चुप सो जाएगा
नूतन अरुणोदय आएगा
बेला वह निकट हो चलेगी जब नलिन मुक्ति का खिलता है !

(२२)

जब रात अँधेरी आती है !
तारों के उजले फूलों की भीनी सुबास लुट जाती है ।

जीवन की विस्तृत नगरी में
परदेशी से चल कर धीमे,
जो भटक भटक दिन भर घूमे
उनके अलसाये अङ्गों को कोमल कर से सहलाती है !

जीवन के जटिल बही-खाते
जो उलट-पुलट कर थक जाते,
फिर भी कुछ बचत नहीं पाते
उनकी आँखों को अंबर का मनहर चल-चित्र दिखाती है !

जीवन की सड़कों पर बैठे
आशा के अथक हथौड़े से
जिनने दिन भर पत्थर कूटे
उनके हित नींद-अटरिया में सपनों की सेज सजाती है !

जो अपनापन भी खो न सके
जीवन-स्वर में लय हो न सके
सूखी आँखें ले रो न सके
मुझ जैसे कुछ पगलों को वह विस्मृति का भेद बताता ह !
जब रात अँधेरी आती है !

(आधुनिका)

वञ्चित पति

दुर्गन्धित पनाले में लोटता इक तिमिंगल,
'ही-ही' कर हँसता अमंगल।
टूक-टूक मानवी हृदय का दर्पण टूट गया।
एक अभागे का भाग्य आज फूट गया।
'टिक-टिक' बजने वाली दिल की घड़ी
आज रुक गई रे सहसा !
आँखों में चकाचौंध, खौल रहा खून,
जीवन के शील पर हो रहा बलात्कार।
कानों में गरज रहे सप्त-सिंधु,
अधमरे मुरगे लड़ रहे प्राणों की लगा बाजी,
मन के मैदान में।
विषाद—हालाहल, पराभव-दावानल,
नर-चालित इक अचूक टार्पीड़ो,
गरज रहा संक्षुब्ध फ्यूजियामा; हराकिरी, हिरोशिमा,
ढहते आशाओं के कागजी घरौंदे वे;

दौड़ रहा कुलटा का वंचित पति निज गृह की ओर
तीर सा, तुरंग सा, प्रभंजन की तरंग सा।
गरलकंठ के गले में गरल की एक घूँट गुडगुडाती,
मूर्त्तिमती विडंबना सी दीवारें खड़ीं अचल,
नाचते-चिढ़ाते से हाड़-मांस के वे पुतले चंचल;
स्वगृह का सुपरिचित वातावरण जो कभी प्रिय था,
आज जलाता रौरव-नरक सा।
गंदे कपड़ों का मलिन परिचय,
धुली, उजली चादर पर धब्बों का मर्म-भेदी संशय,
'टूटि खाट, पिय के बाँह, सुख कै लूटि!'
और वह अजनबी की आहट!
आंदोलित अर्ध-चेतना के कल्पित क्रूरतर घोर-दृश्य
तप्त-लौह की सलाखों से चुभते बारंबार हृदय में;

*　　　*　　　*

बुद्धि पर पाला पड़ा,
उफनते दूध पर शीतल जल,
मौन हुईं सहसा गरजतीं शतघ्नियाँ,
पत्थर पर ठोकर खा फिर गई तरंग;
वंचित पति घर जाकर मूर्च्छित हुआ कुरसी पर।

स्वर्ग-वासी की स्मृति में !

'कल सुबह आठ बजे
राजधानी नगर में, निज घर में
विभाग-हीन मंत्री श्री माननीय धनीराम
चल बसे सहसा हृदय की गति रुक जाने से,
निज परिवार और देश को अनाथ कर,
लाखों हृदयों में विषाद भर।
उम्र ही कितनी थी अभी उनकी? सिर्फ़ पैंतालीस;
इस कठिन समय में सारा देश
रखता था उनसे बड़ी आस।
वे थे महान राजनीतिज्ञ,
अर्थशास्त्र के कोविद, महा-विज्ञ।
देश की बढ़ती आबादी का सवाल
हल करने के लिए बहुत से सुझाव
उन्हें याद थे जबानी।
उनकी उपस्थिति से शोभा बढ़ती थी
धारा-सभा की और सदस्यों की
तुमुल हर्ष-ध्वनियों के सागर में
नाव सी तैरती थी उनकी सुपरिचित, मधुर वाणी।

उनकी गरज सुन कर तहलका मच जाता
कुटिल राष्ट्र-द्रोहियों के हृदय में।
उनके गँभीर उद्गारों के प्रखर प्रवाह में,
उनके चञ्चल करों के मोहक अभिनय में
श्रोता-गण भूल सुध-बुध सब, तन्मय हो
धीरे सो जाते, निज को खो जाते।
कितनी आशाएँ थीं सब लोगों को उनसे ?
किंतु अचानक हाय............
उनके परिवार के शोक-मग्न हृदयों को
हमारी हार्दिक समवेदना।'

काली लकीरों के बीच लिखा यों सभी पत्रों ने।
और एक दैनिक ने संपादकीय स्तंभ में लिखा था—
'एक हस्ती मिट गई है, एक दीप बुझ गया है; वगैरह।
नेता-गण के हार्दिक समवेदना-सन्देश,
शोक-सभाएँ, जनता का अश्रु-तर्पण,
देश की श्रद्धांजलि, राजसी वैभव भरे सम्मान-प्रदर्शन,
ये सब सिर्फ़ उसी ने नहीं देखे जिसके लिए थे ये;
माननीय मंत्री नहीं हैं अब;
शेष मात्र मूषिकों का आर्त्त-रव !
उनका सुन्दर बँगला दे दिया गया है भाड़े पर,
बेच दी गई उनकी चमकती, बिलकुल नई मोटर;
अगणित स्वागत-पत्रों की मोटी गठरियाँ बाँध कर,
बीबी-बच्चे सब लौट गए दूर देहात में अपने घर।

माननीय मंत्री की बच रही एक ही निशानी अब,
उन चूहेदानियों में, जिनका उन्होंने निज
कर-कमलों से किया था उद्घाटन-महोत्सव ।

माननीय मंत्री नहीं हैं अब
सँकरे प्लेटफार्म पर एकत्रित जन-समूह,
गगन-भेदी जयजय-कार, पुष्प-हार, सस्मित मुख,
उत्सुक सहस्र-नयन, स्वागत-सुख
उनके हेतु नहीं अब;
उनके लिए तो मूषिकों का आर्त्त-रव !
माननीय मंत्रीजी सो रहे
जीवन के सतरंगे सपनों के स्पर्श से दूर,
जीवन-ज्वर-ज्वाला के प्रमत्त-प्रलाप से, हर्ष से, अमर्ष से दूर,
सो रहे बरफ की चादर ओढ़
अनस्तित्व के शीतल प्रांगण में,
अविवेकी मृत्यु के कठोर-क्रूर आलिंगन में ।
मृत इतिहास की गन्दी किताबों के
फटे-चिरे मटमैले पन्ने वे—
भूलुंठित राज-मुकुट, कुण्ठित कृपाण,
दुर्गम दुर्गों के भग्न सिंह-द्वार,
उजड़ी समाधियाँ, हाड़ों से भरे श्मशान,
नाच चमगादड़ों का, कर्कश उलूक-गान.
काई जमीं नंगी वे दीवारें,
मुरचा लगी, बिखरी यादगारें,

विस्तृत साम्राज्य ये भाड़े के बँगले हैं;
कहाँ हैं कहो, अब माननीय मंत्री जी ?

जाड़े की अँधेरी रात,
पाला पड़ रहा और 'साँय-साँय' कर रही शीत-वात,
निर्जन नगर-वीथियों में सीटी बजाती हुई
रुद्ध वातायनों को करुण करों से छूती हुई
'साँय-साँय' कर रही शीत-वात, जाड़े की अँधेरी रात !
उष्ण परिरंभ में सुख से निद्रित यौवन,
कंबलों, रजाइयों के क्रीत आलिंगन की
उष्णता में बुढ़ापे को अश्वासन,
सपनों की रंगीनी में भूला भोला बचपन;
किंतु उधर ठण्डी कब्रों में नंगी जमीन,
करवटें बदल रहीं प्रेतात्माएँ मलीन,
स्वर्ग और नरक के छाया-चित्र
नाचते तंद्रिल नयन-सम्मुख,
करवटें बदलती, बेचैन लोट रही
मंत्री जी की माननीय लाश ।
मृत्यु-देव है उजड्ड, गँवार; नहीं तो
कैसे करता माननीय जी का यह अपमान ?
माननीय मंत्री जी चल बसे
सैकड़ों योजनाएँ, हजारों कागजात,
टेबुल और कुर्सियाँ,
संवाददाताओं के शुभ-दर्शन,

प्लास्टिक की फैक्टरी का उद्घाटन,
सब कुछ भूल गए—
लड़के की पढ़ाई का प्रबंध, भाँजे की नौकरी,
रेशम सजी पुतलियों की मंद मुसकानें,
जिंदगी के अफसाने
सब कुछ भूल चल बसे जल्दी में।
अगणित कीटकों का अद्भुत जन्म-स्थान
मंत्री जी की वह समाधि निष्प्राण।
'साँय-साँय' कर रही ठण्डी हवा, (अँधेरी रात)
जिंदगी के टूटे कल-पुरजों से करती बात,
रूठे ठूँठों को ओस से भिगो रही,
प्रलय की रंगभूमि को अपने आँचल से छा रही;
कहाँ हैं मन्त्री जी? कहो, क्या कर रहे वे?
पत्रों के संस्मरणांक बिछा कर सो रहे क्या?
पवन की कराह में वह कहो, किसकी पुकार?
प्रेतात्माओं का वह चिर अशांत हाहाकार,
झगड़ रहे हैं वे आपस में, जगह की कमी हाय!
धुँधले अँधेरे में वे कौन से विचित्र चित्र?
मंत्री जी के अप्रकाशित श्वेत-पत्र।
उनके हस्ताक्षर कहाँ हैं जी?
कब्र पर फिर से ओस पड़ रही क्या?
भूल जा! भूल जा! भूल जा!
भूल जा, जीवन का असंतुष्ट दीन-स्वर,
कोल्हू के बैलों का चक्कर।

आवागमन-हीन पथ,
टूट गई है धुरी, भग्न जीवन-रथ;
लोरियाँ गा रही शीत-वात,
स्नेह-मई मात;
नंगी जमीन पर सो रहे ये युग-युग,
पिरामिडें, ताज-महल, ध्वस्त नगरों के उन्नत मृत्यु-नग।
फिर से लगेगी जीवन की फेरी,
सोने में न हो देरी;
सो जा, ओ पगले! तू सो जा अब!
नंगी जमीन पर विराजती स्तब्ध शांति,
मिटी नहीं क्या अब तक भ्रांति?
थकित आत्माओं का सुखद यह शयनागार,
व्यर्थ क्यों उठता पुकार?
हहराता झंझा-वात,
शीत करों से छूकर,
हिम से जग को धोकर,
उजड़े घरों के किवाड़ खटखटाता,
बुझते चूल्हों की राख उड़ाता,
हहराता झंझा-वात काली, रात!
शीतल समाधि में मंत्री जी
करवटें बदल रहे फिर अशांत,
गड़े मुर्दे उखड़ रहे आज रात
भंग हो रहा मरण का एकांत!

पलायन

(प्रस्तावन)

जिंदगी की भूख ऐसी है कि वह अपने आपको खा जाती है।
प्यास ऐसी है कि वह मोम-बत्ती सी अपने को पी जाती है।
दोनों हाथों से बिखेरती अपने को धरती पर, रानी सी
प्राण का खजाना खोल पानी सा बहाती है!
मुट्ठी में बालू ठहरता नहीं;
समय के फूटे घड़े में क्या पानी ठहरता कहीं?
दिल की घड़ी की धुकधुक और टिकटिक सुन लो न तुम्हीं,
स्वयं गिन लो न तुम्हीं?
'धक! धक! टिक! टिक!' क्षण-क्षण
शीघ्र ही बज उठेगी कार्यालय छोड़ने की घण्टी 'टन! टन! टन!'
मौत मेहमान नहीं, जो शाम को आ तड़के चली जाए!
पीछे लगी वह छाया सी देकर जीवन ऋण—
वह ऐसी नहीं जो छली जाए!
जन्म में जन्म लेकर मौत में मर जाती वह,
इस तन के साथ साथ मिट्टी हो जाती वह!
आगे कैसे बढ़ूँ? चुक रहा तेल;
यात्रा अनन्त पर, ऊँचे पथ में शैल।

जानता हूँ, मोटर रुक जाएगी
(अन्य दुर्घटनाएँ असम्भव नहीं, फिर भी)
किसी निबिड कानन में
या मरु के निर्जन में
तेल चुक जाएगा और मोटर रुक जाएगी।
व्यर्थ सब माप-दंड और अनुमान सब,
कोई नहीं कह सकता—तेल चुकेगा कब ?
व्यर्थ एड़ी-चोटी का पसीना,
व्यर्थ यह आँसू बहाना,
व्यर्थ अपने, दूसरों के लोहू के छींटे छितराना !
पीले मुँह, काले मन
दृष्टि क्षीण, दीन नयन
रहता कुछ भी न स्मरण
झड़ते केशों में से
झाँक रहा गंजा सिर
जिंदगी खाती कुतर
अपने को पल पल पर;
टप-टप चू रहीं मोम-बत्ती से बूँदें जमीन पर,
देखो, गुलाब का लाल फूल मुरझा रहा आसमान पर;
सीटी दे रही ईंजिन,
नजदीक आ गया स्टेशन।
आखिर बच रहेंगी दो बूँदें आँसू की, मोम की,
मुट्ठी भर राख में दो हड्डियाँ गुलाम की;
गाड़ी से उतर कर, टिकट देकर, साँझ की झुटपुट में

खाली जेबें ले चल पड़ेंगे हम सभी—
दिशि-हीन दिशि की ओर
शशि-हीन निशि की ओर
रस - हीन मसि की ओर!

(पलायन)

चलो, चलें;
जिंदगी के बही-खाते बन्द कर,
स्थिति के बन्धन से समय को स्वच्छन्द कर
सम्पूर्ण शून्य की ओर; चलो, चलें!
झपक रहा लाख-लाख आँख वाला काला नाग आसमान,
ऊँघ रहा बेसुध गेंडुरी मार धरती का अन्धा अजगर अजान;
उर के कल-पुरजों की अविरत धुक-धुक धड़कन,
ममता का विष-दंशन, मंद हुआ, मुरझाया।
कैदी करवट बदल नींद में गुनगुनाया—
'क्या प्रभात नहीं आया?'
विस्मृति-मधु-पान-मग्न
प्रहरी-गण निद्रा के नीलाचल-शिखरों पर ध्यान-मग्न,
वे नहीं जानते कि चलती छायाएँ छलती हैं,
कल की दीवारें हिलती हैं।
बेचारे क्या जानें कि नैश स्तब्धता की पुकार
झींगुरों की झंकार में बार बार
स्वर मिला फुसफुसाती ओस-सनी
कौन सी भयद, मौन चेतावनी?

चारों ओर सन्नाटा
यह कलरव का भाटा
सुनाई दे रहा अब सिर्फ़ एक डायन का खुर्राटा;
कहो, किधर राज-सुता ?
उसके सिवा कौन देगा साथ, बता ?
बड़ी बड़ी झाड़ियाँ खड़ीं घनीं,
हर आहट एक हिंस्र सनसनी,
कैसे धरूँ पग आगे ?
भय के सुप्त जीव जागे !
आज रात जीवन के ऊसर खेतों पर
चाँदनी लुटा रहे थकित, मंद इंदु-कर,
बोलता सा सन्नाटा छाती पर पत्थर धर
गुनगुनाता तनती नसों के तारों पर अटपटा एक स्वर ।
कैसी बनी आज रात चाँदनी ?
पाले में सिकुड़े, मुड़े पुष्प-प्रेतों का पराग,
मरणासन्न जीवन के विषण्ण दीपकों का मलिन प्रात-राग,
उनींदी देवियों की मुँदी पलकों में
धुँधले दुस्वप्नों की चल छाया,
मरघट के पनघट पर उपल-उपहास-मई
लहरियों की हास-चपल माया,
कैसी बनी आज रात चाँदनी ?
विस्तृत वसुधा पर आज रात चलता चाँदनी का तूफ़ान,
सूखे पातों के मर्मर में गुप्त वीणा की अभिशप्त तान !

राज-सुता ! राज-सुता !
फूलों तोली जाने वाली ओ सुकुमारी !
राजा की बिटिया लाड़ली, कुँवारी !
आज रात तुम्हीं मेरी
बनो राज-सुता प्यारी !
क्या न मेरा साथ दोगी आज
छोड़ कर अपना राज ?
भूल सड़कों की धूल,
किसकी बपौती हैं विस्मृति के फूल ?
आफिस की सीढ़ियों की कराह
टाइपराइटर की 'खट ! खट ! खट !'
ऐंठे मुरदों सी कुर्सियों की आह
और मेज स्याही के रंग बदलती गिरगिट
चश्मे की वह चुभती सी निगाह
डाइन के मन की चाह,
आज तू भुला दे अपनापन
कोरे कागद सा यह जीवन !
टूटीं शृंखलाएँ, तुम छूटीं, ओ राज-सुते ! चलो, चलें !
चाँदनी की चादर में ऊँघ रहा अंधकार,
अतल के सपने निकल चल पड़े करने विहार;
किंतु कल दिनकर के प्रखर प्रकाश में
लँगड़ा-लूल्हा सत्य स्वीय-रूप धर कर,
पूर्व-पश्चिम के खूनी लोथड़ों की लाल आँखें मटका कर
रोक लेगा अपनी राह । उसके पहले ही सत्वर

चलो, चलें !
पूछो न—'किस ओर !'
प्रश्न और सन्देह द्रौपदी के चीर;
खाली झोली अब हाथ ले
पहले यहाँ से चलो, चलें !
चलो कहीं भी, चाहे मन चाहे या न चाहे,
जीवन-व्याध के नुकीले गरल-बुझे तीरों से
चक्र-व्याज से दिन दूने, रात चौगुने बढ़ते साँझ-सबेरों से
राग से
विराग से
सर्वनामों, विभक्तियों के विभाग से,
जीवन के व्याकरण से
अंगों के असहयोग-आन्दोलन से
अङ्कों की निरंकुश प्रभुता से
यन्त्रों की शत्रुता से
मूढ़ों की भ्रातृता से
जहरीले फूलों की फाँसी से
आधे से, पाव से, आशा की खाँसी से,
दैनिक व्यवहार के दशमलव भिन्नों से
बीजगणित-नीतियों के लिपे-पुते पन्नों से
दूर कहीं, चलो चलें;
प्रचार से
तन और मन के व्यभिचार से
क्लोरोफार्म से विचारों के भार से

काली घूँघट वाली लजीली रात से
स्नान-परिधान में खिलखिलाती निर्लज्ज, अर्ध-नग्न प्रात से
हरी-भरी फसल पर टिड्डियों के घात से
जोंक की कृतज्ञता से
गिद्ध की साँत्वना से
भेड़िए की करुणा से
मगर के दृगजल से
जंबुक-विनय से
बगुले के तप से
भ्रमर के प्रणय से
कुशल पूछने वाले हितैषियों से
चलो दूर, चलो, चलें;
चलो कहीं भी,
खँडहर की छाया छोड़
खूनी की माया छोड़
जासूसी आँखों के उज्वल दीपों से दूर
गलियों के पापों से दूर
प्यासे अधरों से ये सूखे, भूखे खेत निर्जल
रूखे, अनगुँथे केशों से बिखरे, घने जङ्गल
वंध्या-वक्ष से कठोर
पथरीले दर्रे कर पार, दूर
नाश की नीली घाटियों से हो
घनीभूत शोणित से असित-रूप
जीवन के लौह-कोट के कंगूर करके पार,

पार कर भाग्य की लकीर, दूर
दूर कहीं चलो, चलें !

दिन तो हमने बहुत बिताए !

क्रीडा में चिर पीडा भूली
और प्रणय में प्रलय भुलाया
मन के फूल कुचलते थे हम
धर अधरों पर स्मिति की माया
हँसते थे या रोते थे हम
दोनों हाथों खोते थे हम
भूल - भुलैए में भरमाए
दिन तो हमने बहुत बिताए !

हम हर साँझ सैर को जाते
काल-ताल में जाल बिछाते
दालमोट फुरसत से खाते
फिर रेडियो सँदेश रटाते
पैसे-सिगरेट की खुमार में
दिवा-स्वप्न निर्बोध रचाते
'देखो ! उस बेंच पर ऊर्वशी !'
कह आँखों से सब सुख पाते
गपशप के झीने परदे में
मन के घंटे बजते धीमे
जुआ, जिंदगी एक जुआ रे !
फिर मन में क्यों खेद हुआ रे !

सदा अपूर्ण रहेगी आशा
सतत अतृप्त सजीव पिपासा
कोई चाहे जीते, हारे
पर पहुँचेगा नहीं किनारे
महा-युद्ध, भीषण अकाल सब,
एक खेल के पहलू अभिनव
खेल जिंदगी एक खेल रे !
धूप-छाँह का क्षणिक मेल रे !
पल भर का प्रबलोन्माद यह
व्यर्थ विनोद भरा प्रमाद यह
जुआ, जिंदगी एक जुआ रे !
फिर मन में क्यों खेद हुआ रे !
जो था स्पृश्य स्वप्न-कलरव में
किंतु असंभव वास्तव-भव में
थे हम राह देखते उसकी
मनो-नयन की खोले खिड़की,
खेल, जिंदगी एक खेल रे !
स्वप्न-सत्य का अचिर मेल रे !

हो रहा अँधेरा और
जलते एक एक कर विजित निराशा के दीपक ठौर ठौर।
थकित चरण मुड़ते घर की ओर,
थकित नयन ढूँढ़ते झुटपुटी के आँचल-छोर।
विहग उतावले हैं निद्रा के वट-तरु पर

स्वप्न-नीड पहुँचने को।
क्या हम भी चल दें घर ?
या बैठे रहें बोलो !
थोड़ी देर बाद यहाँ कोई न रह पाएगा;
नीरव निशीथ से कानाफूसी करती
निर्जन नगर-वीथियों में
भूले-भटके यात्री के जूतों की आहट छोड़,
शक्की कुत्तों की गुर्राहट छोड़
कुछ न सुनाई देगा;
कोई न रह पाएगा।

चलो, चलें !
भूखे भेड़िए से टूट पड़ने वाले कल से
गोंद से, कालिख से चिपकने वाले कल से
बागों से, लोगों से,
रोशनी से, सनसनी से,
चेहरे ! ये सब चेहरे !
चलती पुतलियों के भाव-हीन चेहरों से
चलो कहीं, दूर चलें !
चलो, कुछ न कुछ करें !
चलो ! चलो ! चलो ! चलो ! चलें !
कहाँ कहो ? जेरूसलेम
अपने मन की काशी !
प्राणियों के संतप्त भाग्य-पथ पर

बोधि-तरु की शीतल छाँह अविनाशी !
कहाँ कहो, आत्मा का तीर्थ-स्थल ?
दिव्य नंदन-पारिजातों का शुभ, शाश्वत-परिमल ?
सात सागर पार कर, राक्षसी के राज बीच
हाड़ों के पहाड़ों पर चंदन के सघन वन हैं।
वन में सहस्र शीस वाला एक काला नाग,
जिसके माथे पर महा-मणि है।
मणि ले लेना हाथ,
थोड़ी दूर जाने पर राह रोक होगा खड़ा
तीन मुँह वाला संदेह-श्वान
माँगता सदा जो जिगर का ही टुकड़ा।
उसके बाद एक बड़ी चट्टान,
उसमें है एक पिंजड़ा,
पिंजड़े में बन्द सुग्गा,
सुग्गे में तेरे प्राण—
आत्मा का तीर्थ-स्थान !

चलो, चलें !
कौन बताएगा राह ?
कौन दिखाएगा राह ?
अपनी अपनी चाह !
सगुन बताने को नीलकंठ आज कहाँ ?
अपनी छाया भी नहीं देती साथ यहाँ।
फन फैला खड़ा हुआ काला नाग,

क्षुधित श्वान उगल रहा मुँह से आग ।

मुझको तेरे सिवा
तुझको मेरे सिवा

किसका सहारा यहाँ ?
अपनी डगमग पग-ध्वनि
अपने उर की धड़कन
साथ लिए काल-नाग की फन-छाया में
चलो, चलें; पीछे कभी न मुड़ें !

निस-दिन यों चलते ही जाएँगे,
बीते की याद न कर पाएँगे ।
मंजिलें मुसाफिरों की, भगोड़ों की क्या मंजिल ?
मकसदें मुसाफिरों की, कहाँ शरणार्थियों का गम्य-स्थल ?
शरण से भागते ये चपल चरण
पाएँगे कहाँ शरण ?
अपनी छाँह देख जो भड़के उसे
कौन दे अभय-वरण ?

यात्रा यह लक्ष्य-हीन
यात्रा यह अर्थ-हीन
किंतु नहीं व्यर्थ, दीन;

गति की अपनी लय है, है निज आनंद,
गति की अपनी यति है, है अपना ही छंद ।
इसीलिए चलो, चलें !

और जब ग्रीष्म के प्रचंड तीव्र-ताप से संतप्त हो वातास

रात के कलुषित, पर शीतल हृदय में लेगा सुख की साँस
तब मैं निर्जन वन-पथ पर बैठ
तुझे तारे दिखाऊँगा—
'देखो, वह ध्रुव-तारा ! वही सातों ऋषि !
और वह अरुन्धती पतिव्रता!'

पावस की रातों में तम की तमाल-छाया में उड़ते
जुगनुओं को पल भर मुट्ठी में पकड़ कर छोड़ देंगे।
और जब अंबर के आँसू रिम-झिम कर बरसने लगेंगे तो
उस पुराने बरगद की गोद में घड़ी भर ठहर लेंगे।
बारिश थमते ही फिर चल देंगे।

शिशर-प्रभात के सदय स्वर्णातप में
देखेंगे अपनी साँस भाप बन शून्य में सरकती।
टूटेंगे सूखे पात खड़खड़ा कर चरण तले
और हम वैसे ही जाएँगे चले।
चलते जाएँगे हम, वैसे ही चलते जाएँगे,
चल-चल कर पहुँचेंगे एक जगह;
जहाँ विश्व अन्त होता
और समय ठहर जाता
वहाँ हम नील गगन के नीचे आँख मूँद पड़ रहेंगे।
वही अपना जेरुसलेम,
बोधि-तरु की शीतल छाँह,
मन की काशी और आत्मा का महा-तीर्थ।

जिंदगी कुतर खाती अपने को;
कातर नयनों में आशा के नन्हे दीप जल मरते एक एक।
काले परदे गिरते एक एक।
निर्जन रंग-मंच पर पल भर बाद
रेंगने लगेंगे अगणित साहसी कीट।
चूहे पड़ेंगे टूट।
दर्शक-गण खिसकेंगे धीरे घर की ओर।
नाटक समाप्त और बन्द सभी शोर।

वह थी नंदन-वन की बहार,
वह था सुरपति का महोज्वल दरबार!
करते गन्धर्व-गुणी गान,
नाचती थीं रंभा, उर्वशी आदि अप्सराएँ,
तडित सम क्षिप्र-गति से, रूप-शिखा से सुलगा सब दिशाएँ।
कहाँ गईं अब वे सब?
कहाँ गया हर्षोत्फुल्ल जन-कलरव?
मक्खियाँ भिनभिनातीं आज यहाँ!
टूटे तार, मूक पड़ीं वीणाएँ,
उलटे, रिक्त सोम-चषक लुढ़कते दाएँ-बाएँ।
सूखे चंदन-लेप, रूखे, मुरझे फूल,
जीवन की जूठन पर कल्पना की भर कुलाँच
चलो, हम उड़ चलें;
मक्खियाँ भिनभिनातीं आज यहाँ।

मरण से पलायन ही जीवन है,
जीवन से पलायन और कहाँ ?
स्मरण से पलायन ही विस्मरण है,
विस्मरण से पलायन और कहाँ ?
जेल से भागने पर शैल खड़ा,
शैल से भागेगा और कहाँ ?
छाया से भाग माया में पड़ा,
माया से भागेगा कब अहा ?
जीवन से पलायन मात्र कला,
कला से पलायन किस तरह ?
जागरण से पलायन कर स्वप्न फला,
स्वप्न से पलायन किस तरह ?
रथ छोड़ पैदल चले हम पथ पर,
पथ छोड़ भागें अब किस तरह ?
इधर आ खो बैठे अपना घर,
अब अपने को खोएँ किस तरह ?
मरघट की बाड़ियाँ हैं महा-नगर,
महा-नगर के लिए फिर मरघट क्यों ?
ईंधन के ईंधन हैं नारी-नर,
तन में कामनाओं का जमघट क्यों ?
दृग-जल पर फेन बनीं मुसकानें,
मुसकानों पर तिर जाना कैसे ?
लताओं के गहने फूल लहू-साने,
फूलों से मन बहलाना कैसे ?

शाँति से पलायन में मन अशाँति,
मन को फिर शाँत करोगे कैसे ?
जिंदगी काट रहा समय भ्रांत,
कहो, फिर समय काटोगे कैसे ?
कैदी के अन्तर में छिपी जेल,
जेल से अब कैदी भागे कैसे ?
जेल में बन्द कैदी, नहीं गैल,
कैदी भागे अब किधर, कैसे ?

कैसे भाग जाएँ हम ?
कैसे जाग जाएँ हम ?
काल की मुट्ठी से बालू बन
कैसे खिसक पाएँ हम ?

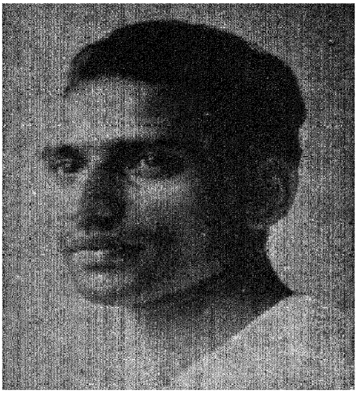

लेखक

पूरा नाम आलूरी बैरागी चौधरी। जन्म १९२४, २५ के करीब तेनाली (दक्षिण भारत) के एक मामूली घराने में। शिक्षा तेलुगू, अंग्रेजी और हिंदी भाषाओं में तेनाली में और बाद को बिहार में। लेकिन अधिकांश स्वाध्याय द्वारा ही। साहित्यिक दलबंदियों से दूर। जीवन में असीम स्वतंत्रता के उपासक और अपने ढङ्ग के अराजकवादी। तेलुगू में एक कविता-संग्रह और एक कहानी-संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। हिंदी में यह पहली प्रकाशित पुस्तक है। आजकल ये 'चन्दामामा' के संपादकीय विभाग में काम कर रहे हैं।